दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

नवम्बर २०२०

Date of Printing = 05-11-20
प्रकाशन दिनांक= 05-11-20

वर्ष ५० : अङ्क १
दयानन्दाब्द : १९६
विक्रम-संवत् : निज आश्विन-कार्तिक २०७७
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२१

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- क्या व्यासपीठ के कथावाचक.... ४
- वेदों के कुछ चुने हुए मन्त्र ३
- कोरोना और जीवन के लिए.... १२
- अन्त:करण चित्त का..... १३
- वेद उसकी विद्यास्वरूप..... १४
- अनादि-त्रयी १८
- दो सनातन सत्ताएँ–शंका समाधान-२ १९
- दलितोद्धार की आड़ में (5) २२

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण स्पेशल (सजिल्द) — **३००० रुपये सैकड़ा**
५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥ (ऋ० १/१६४/३१)

शब्दार्थः- **अनिपद्यमानम्**=अविनाशी, **आ**=सीधे, आगे **च**=और **परा**=उलटे, वापसी **च**=भी **पथिभिः**=मार्गों से **चरन्तम्**=विचरण करनेवाले, व्यवहार करनेवाले **गोपाम्**= इन्द्रियों के स्वामी को **अपश्यम्**=मैंने देखा है, अनुभव किया है, जान लिया है। **सः**=वह इन्द्रिय-स्वामी **सध्रीचीः**= सरल दशाओं को और **सः**=वही **विषूचीः**= विषम दशाओं को **वसानः**=धारण करता हुआ **भुवनेषु+अन्तः**=लोकों के बीच **आ+वरीवर्त्ति**=पुनः-पुनः आता है।

व्याख्याः- इस छोटे से मन्त्र में कई बातें कही गई हैं- (१) आत्मा को यहाँ 'गोपा' कहा गया है। 'गोपा' का अर्थ इन्द्रियों का स्वामी है, अर्थात् आत्मा इन्द्रियों से भिन्न है। इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हैं, वरन् वह इनका स्वामी है। गोपा का अर्थ 'इन्द्रियों का रक्षक' भी होता है। इन्द्रियाँ तभी तक शरीर में कार्य करती हैं, जबतक आत्मा शरीर में रहता है। विचार से देखो, स्वामी के लिए वेद ने रक्षक होने का विधान कर दिया है।

(२) इन्द्रियों के आत्मपन का खण्डन का वेद आत्मा को 'अनिपद्यमान'=नष्ट न होनेवाला बताता है। इन्द्रियाँ विनाशी हैं, शरीर भी विनाश को प्राप्त हो जाता है, किन्तु आत्मा अनिपद्यमान=अविनाशी है, अर्थात् शरीर-नाश के साथ आत्मा का नाश नहीं होता। इन्द्रियों के विचार से आत्मा विकारी नहीं होता। इसी शब्द को मन में रखते हुए ब्रह्मविद्या के पारङ्गत आचार्य याज्ञवल्क्य ने बड़े प्रबल शब्दों में कहा- **अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा।** बृ० ४।५।१४

अरे मैत्रेयि! यह आत्मा अविनाशी है, इसका उच्छेद कभी नहीं होता।

यदि आत्मा को अनित्य माना जाए तो दो बड़े भारी दोष आते हैं, आत्मा को नित्य माने बिना जिनका समाधान नहीं हो सकता। पहला तो यह कि आत्मा को अनित्य मानने का अर्थ है कि शरीर की उत्पत्ति के साथ आत्मा की भी उत्पत्ति होती है। उस अवस्था में प्रश्न होता है-क्यों कोई दरिद्र के घर उत्पन्न हुआ? क्यों कोई ऐश्वर्य-सम्पत्ति-सम्पन्न दशा में उत्पन्न हुआ? क्यों कोई अङ्गविकल उत्पन्न होता है? क्यों किसी को सुडौल-सुन्दर शरीर मिलता है? मानना पड़ता है कि इस शरीर से पहले कोई ऐसा तत्त्व था, जिसके कर्मों का फल उसे ऐसा मिलता है। बिना कारण के भले-बुरे शरीर के साथ संयोग से होनेवाले सुख-दुःख भोगने का नाम है- **'अकृताभ्यागम'**-न किये को प्राप्त करना। दूसरा दोष है-**'कृतहान'**-किये का नाश। विनाशी आत्मा शरीर-विनाश के साथ ही नष्ट हो जाना चाहिए। अन्त के कर्मों का फल भोगे बिना आत्मा नष्ट हो गया, यह अव्यवस्था है, किन्तु संसार में सर्वत्र व्यवस्था है, अतः इस युक्तिविरुद्ध बात का मानो निरास करने के लिए ही वेद ने आत्मा को **'अनिपद्यमान'** कहा है। आत्मा को अविनाशी मानने से संसार-रचना का प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है। आत्मा के कर्मों का फल देने के लिए यह जगत् रचा गया है। जो लोग आत्मा की उत्पत्ति मानकर उसका नाश नहीं मानते,

वे मानो तर्क से कोरे हैं। क्या कहीं कोई ऐसी वस्तु है जो उत्पन्न तो हो किन्तु नष्ट न होती हो?

(३) **'आ च परा च पथिभिश्चरन्तम्'** कहकर वेद ने आत्मा की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी है। उलटे-सीधे रास्तों से विचरना तभी हो सकता है जब चलने में, विचरने में स्वतन्त्रता हो। इस मन्त्र को लेकर आत्मतत्त्वज्ञों ने आत्मा का स्थूल लक्षण माना है- **'कर्तुमकर्तुमन्यथा वा कर्तुं समर्थः'** जो करने, न करने अथवा उलटा करने में समर्थ हो। महात्मा लोग कहते हैं- **'स्वतन्त्रः कर्त्ता'**= कर्त्ता उसे मानना चाहिए, जो कर्म करने में स्वतन्त्र हो।

(४) अच्छे मार्ग से चले, अच्छे कर्म करे तो परिणाम भी अच्छा हो। बुरे आचरण का, पाप-कर्म का फल भी विषम होता है। जो करता है, वही भरता है। स्वतन्त्रता का जैसा उपयोग किया जाएगा, उसका परिणाम भी वैसा ही होगा, इस बात को **'स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः'** शब्दों के द्वारा प्रकट किया गया है। संक्षेप में कर्मफलवाद का संकेत कर दिया गया है।

(५) इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए **'आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः'** कहा गया है। वह संसारों में बार-बार आता है। दूसरे शब्दों में उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है अर्थात् संसार में जब कोई प्राणी दुर्गति की अवस्था में दीखे तो समझना चाहिए कि उसने स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किया है। उसकी दुर्गति आकस्मिक, अहेतुक, कारण के बिना नहीं है। कर्म करने में स्वतन्त्र होता हुआ आत्मा फल भोगने में परतन्त्र है।

आत्मा के सम्बन्ध में इस मन्त्र द्वारा जो कुछ कहा गया है, वह युक्तियों से सिद्ध है, किन्तु वेद में **'अपश्यम्'** [मैंने देख लिया है] शब्द कुछ और ही इशारा (सङ्केत) कर रहा है। वेद कहना चाहता है, आत्मसम्बन्धी इन तत्त्वों को देखो, अनुभव करो, साक्षात् करो। वैदिक योगी कह गये हैं- **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि!** बृ० ४।५।६ अरे मैत्रेयि! आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। दर्शन के साधन हैं- श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन।

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः- वेद-वचनों के श्रवण द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। वेद से बढ़कर आत्मज्ञान करानेवाला ग्रन्थ ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है। आत्मजिज्ञासु को तो अवश्य वेद पढ़ना चाहिए।

मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः- युक्तियों के द्वारा मनन करे। कहीं कोई श्रुति के नाम से अनर्गल बात ही न सुनाने लग लाए और श्रोता भ्रम में न पड़ जाएँ, उसके लिए कहा-**मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः**=युक्तियों से मनन करे। इसी कारण तर्कविद्या को शास्त्रों में अध्यात्मविद्या कहा है।

जो मत युक्ति से भय खाते हैं, तर्क से डरते हैं वे अपने मत की असारता मानो स्वयं स्वीकार करते हैं। श्रवण, मनन के बाद निदिध्यासन आता है। बार-बार, निरन्तर वैसा आचरण निदिध्यासन कहाता है, अर्थात् अध्यात्मविद्या सुन-छोड़ने और विचार लेने मात्र से सफल नहीं होती वरन् यह तो आचरण की वस्तु है। श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप साधनों का जिसने अभ्यास किया है, उसे 'दर्शन'=आत्मदर्शन सुलभ होता है।

साभार- स्वाध्याय सन्दोह

❑❑

निवेदन

वैश्विक महामारी कोरोना के कारण **'दयानन्द सन्देश'** अप्रैल 2020 से प्रसारित नहीं हो पाया। आपको हुई असुविधा के लिये हमें खेद है। अब नवम्बर-२०२० का अंक विधिवत् प्रकाशित-प्रसारित करते हुए एवं सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता है कि **'दयानन्द सन्देश'** पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पचासवें वर्ष का प्रथम अंक आपके हाथों में है। इन वर्षों में आपसे प्राप्त भरपूर स्नेह व सम्मान के लिए दयानन्द सन्देश परिवार आपका हृदय से आभार व्यक्त करता है। आशा है, भविष्य में भी आपका स्नेह व सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्या० व्यवस्थापक

क्या व्यासपीठ के कथावाचक अब अग्निपरीक्षा देंगे?

(धर्मपाल आर्य)

मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि विवाद पर कोर्ट में सुनवाई होने वाली है। याचिका में जन्मभूमि स्थल से ईदगाह हटाने की मांग की गयी है, साथ ही याचिका में मस्जिद को हटाकर पूरी जमीन मन्दिर ट्रस्ट को सौंपने की मांग भी की गयी है। ये मांग अधिवक्ता विष्णु शंकर जैन ने मथुरा की अदालत में दायर की है। याचिका में कहा गया है कि 1968 में श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थान और शाही ईदगाह प्रबंध समिति के बीच हुआ समझौता पूरी तरह से गलत है और भगवान कृष्ण एवं उनके भक्तों की इच्छा के विपरीत है। इसलिए उसे निरस्त किया जाए और मन्दिर परिसर में स्थित ईदगाह को हटाकर वह भूमि मन्दिर ट्रस्ट को सौंपी जाए।

इस मामले में मथुरा में अखिल भारतीय तीर्थ पुरोहित महासभा ने 17वीं सदी की मस्जिद को हटाने के लिए अदालत में याचिका दायर करने की आलोचना की। यानि व्यासपीठ के कथावाचक और सेकुलर तीर्थ पुरोहित सभा खुद को श्रीकृष्ण जी के वंशज बताने वाली समाजवादी पार्टी पर बात करें। पहले थोड़ा सा इतिहास जन्मभूमि स्थल पर बनी ईदगाह के बारे में जान लें कि भारत का मुसलमान और सेकुलर जमात गोरी गजनी ओरंगजेब की विचारधारा को न केवल सहेज रहा है बल्कि उसे आगे बढ़ा रहा है।

अब मुसलमान कह रहे हैं कि नहीं वहाँ तो ईदगाह बहुत पहले से है। इस बहुत पहले का मतलब क्या है? क्या महाभारत से भी पहली है या श्रीकृष्ण जी के जन्म से भी पहली है। असल में मस्जिद मजार और दरगाह एक ऐसी चीज जो खुद ही पैदा हो जाती है। दो हथोड़े लग कर शहीद हो जाती है, बस अगर कुछ नहीं करती तो कभी आत्महत्या नहीं करती। वरना शरमाकर आत्महत्या कर लेनी चाहिए कि मैं दूसरे की आस्था स्थल पर खड़ी हूँ। मुझे यहाँ से अरब देश चले जाना चाहिए, ये जगह तो इनके पूजनीय आराध्य देवी-देवताओं की है।

आज जिस जगह ये ईदगाह खड़ी है ये जगह कभी पाँच हजार साल पहले मल्लनपुरा क्षेत्र के कटरा केशव देव में राजा कंस का कारागार हुआ करता था। इसी कारागार में रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को कृष्ण जी का जन्म हुआ था। महाभारत के पश्चात जनमान्यता के अनुसार कारागार के पास सबसे पहले भगवान कृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ ने अपने कुलदेवता की स्मृति में एक मन्दिर बनवाया था। जबकि आम लोगों का मानना है कि यहाँ से मिले शिलालेखों पर ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है जिससे यह पता चलता है कि यहाँ शोडास के राज्य काल में वसु नामक व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर एक मन्दिर, उसके तोरण द्वार और वेदिका का निर्माण कराया था। इतिहासकारों का मानना है कि सम्राट् विक्रमादित्य के शासन काल में दूसरा मन्दिर 400 ईसवी में बनवाया यह भव्य मन्दिर था। इसकी भव्यता के कारण उस समय मथुरा संस्कृति और कला के बड़े केंद्र के रूप में स्थापित हुआ था। लेकिन महमूद गजनवी ने हमला कर सब कुछ नष्ट कर दिया था।

बाद में खुदाई में मिले संस्कृत के एक शिलालेख से पता चलता है कि 1150 ईस्वी में राजा विजयपाल देव के शासनकाल के दौरान जज्ज नाम के एक व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर एक नया विशाल और भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया था, लेकिन विचारधारा के आतंक से ये भी नहीं बच सका और इस मन्दिर को 16वीं शताब्दी के शुरुआत में सिकंदर लोधी ने नष्ट कर डाला।

अब इसके लगभग 125 वर्षों बाद जहांगीर के शासनकाल के दौरान ओरछा के राजा वीर सिंह देव बुंदेला ने इसी स्थान पर चौथी बार मन्दिर बनवाया। ये भी बड़ा भव्य मन्दिर था। कहा जाता है कि इस मन्दिर की भव्यता से चिढ़कर औरंगजेब ने सन 1669 में इसे तुड़वा दिया और इसके एक भाग पर ईदगाह का निर्माण करा दिया।

ओरंगजेब द्वारा तोड़ने के बाद अब सालों तक ये जगह ऐसे ही रही इसके बाद ब्रिटिश शासनकाल में वर्ष 1815 में नीलामी के दौरान बनारस के राजा पटनीमल ने इस जगह को खरीद लिया। वर्ष 1940 में जब यहाँ पंडित मदन मोहन मालवीय आए तो श्रीकृष्ण जन्मस्थान की दुर्दशा देखकर वे काफी निराश हुए। इसके तीन वर्ष बाद

1943 में उद्योगपति जुगलकिशोर बिड़ला मथुरा आए और वे भी श्रीकृष्ण जन्मभूमि की दुर्दशा देखकर बड़े दु:खी हुए। इसी दौरान मालवीय जी ने बिड़ला जी को श्रीकृष्ण जन्मभूमि के पुनरुद्धार को लेकर एक पत्र लिखा।

बिड़ला जी ने भी उन्हें जवाब में इस स्थान को लेकर हुए दर्द को लिख भेजा। मालवीय की इच्छा का सम्मान करते हुए बिड़ला ने सात फरवरी 1944 को कटरा केशव देव को राजा पटनीमल के तत्कालीन उत्तराधिकारियों से खरीद लिया। 21 फरवरी 1951 को श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट की स्थापना की गयी लेकिन ट्रस्ट की स्थापना से पहले ही यहां रहने वाले कुछ मुसलमानों ने 1945 में इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक रिट दाखिल कर रखी थी। इसका फैसला 1953 में आया। इसके बाद ही यहाँ कुछ निर्माण कार्य शुरू हो सका। यहाँ गर्भ गृह और भव्य भागवत भवन का पुनरुद्धार और निर्माण कार्य आरंभ हुआ, जो फरवरी 1982 में पूरा हुआ।

अब एक बार फिर 2020 में जन्मस्थल की आजादी की मुहिम शुरू हुई है चूँकि यह एक आपसी समझौता था जन्मभूमि ट्रस्ट और ईदगाह प्रबंध समिति के बीच यानि कानून नहीं, आपसी समझौता। लेकिन अब इसमें भागवत कथा करने वालों के चेहरों से भी नकाब उतर जायेगा। चिन्मयानंद बापू, साध्वी चित्रलेखा, मोरारी बापू समेत सभी अली मौला वाले यहाँ किस पक्ष में खड़े होंगे? क्या वो अपने विशाल पांडालों से जन्मस्थल मुक्ति की घोषणा करेंगे? या पैसे कमाने के लालच में और अपने आप को सेक्युलर दिखाने के चक्कर में मौन रहेंगे। अब इस आन्दोलन से यह भी साबित हो जायेगा कि ये लोग कृष्ण भक्त हैं या रंगमंच के कलाकार।

उस मंच के आसपास जो हजारों की भीड़ होती है, वो श्रीराम, श्रीकृष्ण स्तुति गान सुनने के लिए आती है। उसमें कई माताएं ऐसी होती हैं जिन्हें इच्छा होती है कि उनका पुत्र श्रीकृष्ण जैसा प्रतापी व बुद्धिमान हो। उनमें कई पत्नियां ऐसी होती है जिन्हें पति के रूप में श्रीराम जैसा वर चाहिए होता है। उस भीड़ में अनगिनत युवा ऐसे होते हैं जो खुद को अर्जुन, भीम जैसे योद्धाओं के रूप में ढ़ालना चाहते हैं और इतिहास में अमर होना चाहते हैं।

ऐसी भावनाओं से ओतप्रोत होकर वे सभी लोग कथा के उस मंच या मंडप में पहुँचते हैं। अपनी आँखें बंद करते हैं और एक-एक शब्द को अपनी आत्मा तक उतारते हैं। उसी भीड़ में ऐसे माँ-बाप भी होते हैं, जो अपने बेटे को साथ इसलिए लेकर आते हैं जिससे वह श्रवण कुमार की कथा सुन सके और उनका आदर्श अपने जीवन में उतार सके। लेकिन तभी अचानक होता है एक बड़ा परिवर्तन और उन पंडालों में बजने शुरू हो जाते हैं अली मौला, सूरत आपकी सुभानअल्लाहए पता नहीं चल पाता कि दान-दक्षिणा देने वाले योगेश्वर श्रीकृष्ण का जीवन परिचय सुनने आये हैं या जमात के मरकज में नमाज अदा करने! कोई किसी मुबारक खान की कथा सुनाने लगता है तो कोई अजान नमाज के फायदे बताने लगता है। संतो के आगे स्वयं को पूरी तरह से समर्पित कर चुकी श्रद्धालु जनता इसका विरोध भक्ति भाव में भरी होने के चलते नहीं कर पाती और उसे यह लगता है कि मंचों से जो बोला जा रहा है शायद वह शास्त्रों, ग्रंथों, उपनिषदों, वेदों इत्यादि में कहीं लिखा हो। हालाँकि अब इन लोगों ने माफी मांग ली लेकिन अब अपने दामन पर लगे दाग धोने का समय है। साथ ही उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष भी खुद को कृष्ण जी के वंशज बताते हैं, अब उनकी भी परीक्षा का समय है, क्योंकि जयकारा लग चुका है कि कृष्णलला हम आयेंगे, मन्दिर वही बनायेंगे।

मैं अपने पाठकों को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आर्यसमाज यद्यपि मूर्तिपूजा का समर्थन नहीं करता, परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर श्रीकृष्ण हमारी संस्कृति के प्राण हैं। इस लेख को विशेष रूप से इसी दायरे में पढ़ेंगे और लेखक की भावनाओं को समझेंगे तो लाभ होगा। श्रीकृष्ण के विषय में महर्षि अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं-

"देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण , कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।"

अत: ऐसे दिव्य युगपुरुषों का तो स्मारक बनना ही चाहिए, वे हमारी ऐतिहासिक अमूल्य विरासत हैं।

'दयानन्द सन्देश' के सुधी पाठकों एवं समस्त देशवासियों को दीपावली की बहुत बधाई और हार्दिक मंगलकामनाएं।

❑❑

वेदों के कुछ चुने हुए मन्त्र

(उत्तरा नेरूर्कर, मो०: ०९८४५०५८३१०)

वैसे तो वेदों के कितने ही मन्त्र हृदयस्पर्शी हैं, परन्तु अपने स्वभाव के अनुसार किसी को कोई मन्त्र अधिक सुन्दर लगता है और किसी को कोई और। सो, इस माह मैं अपने कुछ इष्ट मन्त्र साझा कर रही हूँ। महर्षि दयानन्द सरस्वती से जब पूछा गया कि प्रार्थना उपासना के लिए कुछ मन्त्र बताइए तो उन्होंने अपने चहेते मन्त्रों को आर्याभिविनय: नामक पुस्तक में निबद्ध कर दिया। मेरे चुने मन्त्र सभी प्रार्थनोपासना से ही सम्बद्ध नहीं हैं, अपितु अन्य विषयों को भी छूते हैं।

सम्पूर्ण प्रार्थना

भरतीय परम्परा के अनुसार हम प्रार्थना से ही प्रारम्भ करते हैं-

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।

पोषं रयिणामरिष्टिं तनूनां स्वादमानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ ऋग्वेदः २/२१/६॥

अर्थात् हे इन्द्र! आप श्रेष्ठ धन हमें धारण कराएं; हमारी बुद्धियों को दक्ष = कुशल जनों के समान बनाएं; हमें अत्युत्तम ऐश्वर्यों से युक्त करें; हमें धनों का पोषण दें; शरीर की आरोग्यता दें, वाणी को सुमधुर कर दें और हमारे दिनों को सुन्दर बना दें।

चर्चा:- इस वाक्य कुछ विश्लेषण बड़े अटपटे लगते हैं, उन्हीं के कारण यह प्रार्थना विशेष है! सो इनपर अब चर्चा करते हैं।

पहला **'श्रेष्ठानि द्रव्याणि'**। धन कुकर्मों से भी प्राप्त होते हैं और तब भी सुख प्रदान करते हैं, परन्तु भक्त परमेश्वर से ऐसे धनों की इच्छा नहीं करता - वह अपने धार्मिक यत्नों से फलान्वित होने की कामना प्रकट करता है। क्योंकि ऐसा भी होता है कि अच्छे कर्म करने पर भी मनुष्य को तदनुरूप फल प्राप्त नहीं होता। परमात्मा ही सब कर्मफलों का निर्धारण करने वाला है। सो, उसी से उपयुक्त फल माँगने में सार है।

दूसरा **'दक्षस्य चित्तिम्'**। बुद्धि तो सभी की होती है, परन्तु कुछ लोग अपने कार्य में निपुण होते हैं और कुछ अनाड़ी। सो भक्त प्रभु से अपने कार्य में कुशलता देने वाली बुद्धि की याचना करता है, जिससे वह अपना कार्य कम से कम प्रयास से, कम से कम समय में और उत्तमता से पूर्ण कर सके। हमारा कोई भी कार्य हो - छोटा या बड़ा - उसको हमें बुद्धिपूर्वक करना चाहिए। इससे कार्य भी उत्तम होता है और हमें प्रसन्नता भी होती है।

तीसरा **'सुभगत्वम्'** तो सुस्पष्ट ही है : सौभाग्य- अपने अनुकूल सब वस्तुओं, जीव-जन्तुओं, बन्धु-बान्धवों की प्रवृत्ति - को कौन नहीं चाहता ! उसी सुख की यहाँ कामना की गई है।

चौथा **'रयीणां पोषम्'**। जो धन हमने इस मन्त्र में ऊपर माँगे, वे हम दुर्व्यसनों में भी गँवा सकते हैं। ऐसा न हो, अपितु वे धन हमें सब प्रकार के बल दें, इस आशय से यह वाक्य कहा गया है। हम समझते हैं कि धन माँगने से ही प्रार्थना पूरी हो गई, परन्तु यहाँ परमात्मा उपदेश दे रहे हैं कि धनों को सुकार्यों से अर्जित करो और फिर उनका सुन्दर कार्यों में व्यय भी करो। कुछ जन समझते हैं कि संगीत, मनोरंजन आदि भी दुर्व्यसन होते हैं। इसलिये इस्लाम ने तो इन्हें वर्जित ही कर दिया! परन्तु यह सही नहीं है। अथक परिश्रम करने के बाद शरीर और मन को शान्त व प्रसन्न करने से हमारे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। इसलिए ये भी हमारे कर्त्तव्य हैं। प्राचीन काल से आज तक राजा के मनोरंजन के लिए विशेष व्यवस्था की जाती है- कभी

विदूषक तो कभी संगीत तो कभी कुछ और। जिसके ऊपर जितना काम का बोझ होता है, उसको उतनी ही मनोरंजन की आवश्यकता होती है। इसलिए **'पोषं'** में मनोरंजन भी गिना जाना चाहिए।

पाँचवाँ **'तनूनामरिष्टिम्'**। तन की आरोग्यता में भी कोई संशय का स्थान नहीं है। 'पहला सुख नीरोगी काया' से कौन नहीं सहमत है! शरीर और मन के स्वास्थ्य के लिए जो भी यत्न करने पड़ें, वे अवश्य करने चाहिए।

छठा **'वाचः स्वाह्यानम्'**। वाणी की मधुरता पर आजकल कम ही लोग ध्यान देते हैं, परन्तु इससे कितने कार्य सफल ही नहीं, अपितु सौहार्दपूर्ण वातावरण को उत्पन्न करते हैं। वेदों ने पदे-पदे वाणी को मधु-समान मधुर बनाने का आह्वान दिया है। जहाँ हमारे प्रयास कम पड़ जाएं, वहाँ परमात्मा हमारी कमी को पूरा करें, इसीलिए यह प्रार्थना है।

सातवाँ **'अह्नां सुदिनत्वम्'**। हमारे ऊपर कोई और आपदा न आए, कोई दुर्घटना न घटे, इसके लिए अन्त में प्रभु से पूरे दिन को ही आह्लादजनक बनाने की प्रार्थना की गई है।

इस प्रकार इस मन्त्र में जैसे साधारण मनुष्य की जितनी भी आकांक्षाएं होती हैं और जो होनी भी चाहिए, वे सभी बड़ी सुन्दरता से, संक्षेप में कह दी गई हैं। अवश्य ही यह मन्त्र सभी के द्वारा अपनी सन्ध्या में सम्मिलित करने योग्य है।

वेदों का महात्म्य

अब वेदों के काव्यत्व को देखते हैं-

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

अथर्ववेदः १०/८/३२॥

अर्थात् समीप होते हुए जीवात्मा परमात्मा को छोड़ता नहीं। तथापि समीप होते हुए भी, वह परमात्मा को देखता तक नहीं। हे जीव! तू परमात्म-देव के काव्य को देख - न मरता है और न वृद्ध होता है।

चर्चा:- इस मन्त्र का उत्तरार्ध आर्यसमाजों में लोकप्रिय है, जहाँ इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है- वेद परमात्मा के काव्य हैं। सृष्टि के आदि से लेकर अन्त तक, वे न तो मरते हैं, न पुराने=अप्रासंगिक होते हैं। वे सदा विद्यमान और नए=प्रासंगिक बने रहते हैं। इससे वेदों की अपौरुषेयता भी स्थापित होती है। यह एक अर्थ अवश्य ही सम्भव और ग्रहीतव्य है, तथापि यह पूर्वार्द्ध से सम्बन्ध नहीं रखता। इस दोष का परिहार प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार की व्याख्या में प्राप्त होता है, जिसको हम नीचे सम्पूर्णता से देखते हैं।

जीवात्मा परमात्मा के सदा सन्निकट रहता है, कोई ऐसा क्षण नहीं होता जिसमें वह परमात्मा को छोड़ सके। ऐसा होते हुए भी, यह बड़ी अचम्भे की बात है कि जीव उसको किसी भी प्रकार से अनुभव करने में असमर्थ होता है। इसके लिए परमेश्वर ही उपदेश देते हैं कि वेदों को पढ़ो! उनमें दिए उपायों से तुम मुझे पा लोगे। तत्पश्चात् न तो तुम मरोगे और न ही जरावस्था, रोग आदि से ग्रस्त होंगे। इस मन्त्र की देवता 'अध्यात्म' है, सो इस मन्त्र को जीवात्मा और परमात्मा में घटाना युक्तियुक्त भी है। यहाँ वेदों के धर्मग्रन्थ होने का और उनके अनुकरण से मनुष्य के परम लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति का उपदेश अतिसरलता से बताया गया है।

वेदोपदेश विषय में एक और मन्त्र अत्यन्त माननीय है-

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवास्मि सख्ये न्योकाः॥

ऋग्वेदः ५/४४/१४, सामवेदः १८२६॥

अर्थात् जो अविद्या की निद्रा से जाग जाता है, उसे ऋग्वेद की ऋचाएँ चाहती हैं, अर्थात् वह ऋग्वेद के ज्ञान को जानने का इच्छुक हो जाता है। जो जाग जाता है, उसे सामवेद प्राप्त होता है अर्थात् सभी वेदों का ज्ञान उसे प्राप्त होने लगता है। जो जागता है, उससे

परमात्मा कोमल स्वभाव के होकर, प्रसन्न होकर बोलते हैं, "तेरी मित्रता में मैं दृढ़ रूप से स्थित हूँ।"

मन्त्र बता रहा है कि जिसको अन्य सब वचनों में अन्धकार दिखने लगता है, वही निद्रा से जगा हुआ होता है। तब उसे वेद जैसे पुकारने लगते हैं क्योंकि उसे ज्ञात होने लगता है कि सत्यविद्या यहीं प्राप्त होनी है। वेदों के स्वाध्याय से वह और जाग जाता है और उनका ज्ञान उसे क्रमशः प्राप्त होने लगता है। उस ज्ञान को व्यवहार में लाते-लाते वह इतना पवित्र हो जाता है कि परमात्मा स्वयं अपनी मित्रता उसे प्रकट करने लगते हैं। परमात्मा हैं तो सभी के मित्र, कमी है तो हममें जो हम उस मित्रता को देख नहीं पाते। वह कमी शनैः-शनैः परमात्मा के आशीर्वाद से पूर्ण होने लगती है और हमें प्रभु प्रकट से होते दीखने लगते हैं। इस प्रकार वेदाध्ययन को छोड़, ईश्वर को प्राप्त करने का और कोई मार्ग नहीं है।

वेदों ने उपनिषद् विद्या को भी प्रमुखता दी है-

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः॥ ऋग्वेदः १०/१४५/३॥

अर्थात् हे उत्तरे=उत्कृष्ट सोम ओषधि! तू सब ओषधियों से उत्तरा=उत्कृष्ट है। इसी प्रकार मैं उपनिषद् (मन्त्र की देवता से ग्रहीत)=अध्यात्मविद्या सब उत्कृष्ट विद्याओं से उत्तरा=उत्कृष्टतर हूँ। और जो मेरी शत्रु कामवासना है वह मुझसे अधरा=नीची है, वह सब नीचों से नीची है।

यहाँ 'उपनिषद्' शब्द से ईश, केन, कठ आदि उपनिषद् नहीं कहे गए हैं, परन्तु जिस कारण से उपनिषदों को उपनिषद् कहा गया है, उस 'अध्यात्म विद्या' अर्थ का ग्रहण किया गया है। सो वेदों में भी जो सब विद्याएं वर्णित हैं, जैसे अग्नि विद्या, मेघ विद्या आदि-आदि, उनमें भी मोक्षपरक अध्यात्म विद्या को वेदों ने सब विद्याओं के ऊपर प्रतिष्ठित किया है और कामवासना को सब वासनाओं से नीचा स्थान दिया है।

इस मन्त्र के अध्यात्म-परक होने से तो यह मुझे प्रिय है ही, परन्तु इसमें मेरा नाम अनेक बार आने से यह मुझे और अधिक प्रिय है!!

शुद्धाचरण

अपने आचरण को सर्वथा शुद्ध रखने के लिए वेद हमें चेतावनी देता है-

यस्तिष्ठति चरति यञ्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
दौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥
अथर्ववेदः ४/१६/२॥

अर्थात् जो कोई खड़ा होता या चल रहा होता है या जो दूसरे को धोखा दे रहा होता है या छिप-छिपकर कुछ कार्य कर रहा होता है अथवा एकान्त में दूसरे को तड़पा रहा होता है या जो दो जन मिलकर अकेले में कुछ गुप्त परियोजना बना रहें हों, तो उन सभी को जानना चाहिए कि तीसरा उनके साथ सदा खड़ा है- वह है उनका वरण-योग्य राजा, परमेश्वर।

यहाँ मनुष्य को चिताया गया है कि कभी ऐसा मत समझना कि तुम परमात्मा से छुपकर कोई भी कार्य कर सकते हो। प्रत्येक परिस्थिति में और प्रत्येक काल में वह सर्वत्र व्याप्त होता हुआ और हमारे सन्निकट रहता हुआ, हमारे प्रत्येक कर्म, वचन और विचार को देखता है। इसलिए हमें झूठ का पूर्णरूपेण त्याग करके, सत्याचरण का सर्वदा निर्वाह करना चाहिए। परमेश्वर की सर्वव्यापकता के इस उपदेश को संसार में प्रायः सभी सभ्यताओं ने माना है। इसमें कोई आश्चर्य न हो यदि यह मान्यता वेद से ही प्रसारित हुई हो!

वेदों के अनेकों ऐसे मन्त्र हैं जो कि भावविभोर करते हैं। मैंने इनमें से अपने कुछ प्रिय मन्त्र प्रस्तुत किए हैं। अगले माह मैं गृहस्थाश्रम आदि पर कुछ अन्य चुने हुए मन्त्र प्रस्तुत करूँगी। आशा है आपको भी ये उतना ही रोमांचित करेंगे जितना मुझे करते हैं!

❑❑

कोरोना और जीवन के लिये चुनौती

(ओमप्रकाश शास्त्री, पानीपत, मो०: ९४१६९८८३५१)

वर्त्तमान समय में मानवता एक ऐसे संक्रमण से जूझ रही है जो अब तक सभी के लिए चुनौती बना हुआ है। हर देश, हर जाति, हर वर्ग इसके शिकंजे में है। कोरोना का अदृश्य भस्मासुर असंख्यों अमूल्य जिन्दगियों को लील चुका है। इसकी विनाशलीला अभी जारी है। इस संक्रमण ने न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे को अन्तहीन दुरवस्था के दौर में धकेल दिया है। कोरोना के चक्रव्यूह ने न केवल राष्ट्रीय अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की राजनीति को बौना और किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया है। कोरोना की दस्तक ने न केवल सामाजिक ताने-बाने को अपितु पारिवारिक सम्बन्धों को भी बुरी तरह से प्रभावित किया है। कई बार तो मुझे आशङ्का होती है कि चीन के द्वारा फैलाया गया यह कोरोना संक्रमण कहीं विश्वयुद्ध की आहट तो नहीं हैं; क्योंकि धीरे-धीरे इस संक्रमण के कारण की परतें जैसे-जैसे दुनियाँ के सामने खुलती जा रही हैं, वैसे-वैसे चीन का विस्तारवादी चेहरा बेनकाब होता जा रहा है।

मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी हिचकिचाहट नहीं है कि कोरोना संक्रमण की दलदल में दुनियाँ को धकेल कर चीन ने मानवता के साथ विश्वासघात किया है। अभी तो मैं चीन के विषय में इससे अधिक लिखना नहीं चाहता हूँ। वैसे तो पूरी दूनियाँ ही कोरोना-संक्रमण के अभिशाप से अभिशप्त है लेकिन हमारे देश में यह संक्रमण जहाँ हमारी जीवनशैली के लिए चुनौती बना हुआ है, वहीं इसने हमारी सामाजिक संवेदनाओं को भी झकझोर कर रख दिया है। यह संक्रमण हमारे पारिवारिक और नैतिक मूल्यों को निर्ममता के साथ परखने वाली एक निर्मम कसौटी है।

हमारे एक मित्र ने पूछा कि उपरोक्त संक्रमण के प्रसार में तबलीगी जमात की भूमिका के विषय में आपका क्या कहना है? मैंने उत्तर दिया कि "महोदय, चीन और तबलीगी जमात की भूमिका को उद्धृत करना अभी मेरे इस लेख का उद्देश्य नहीं है। इस विषय पर अलग से विस्तारपूर्वक लिखने की आवश्यकता है। अभी मैं कोरोना संक्रमण से मानव जीवन के समक्ष चुनौतियों के विषय में अपना लेख केन्द्रित करना चाहता हूँ। यदि मुझे सही याद है तो सरकार ने २१ मार्च को पूरे देश में जनता कर्फ्यू की घोषणा की थी। इसके बाद केन्द्र सरकार ने देश में सभी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, औद्योगिक, राजनैनिक और शैक्षणिक सांस्कृतिक गतिविधियों को लॉकडाउन के तहत अनिश्चितकाल के लिए प्रतिबन्धित कर दिया था। उपरोक्त प्रतिबन्धों का चाहे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष हो, सामाजिक, पारिवारिक जीवन पर व्यापक और दूरगामी प्रभाव पड़ा है। इससे निकट भविष्य में पार पाने की संभावना काफी कम है।

इस संक्रमण के कारण ठप्प हुई आर्थिक, व्यापारिक और औद्योगिक गतिविधियों ने देश के आर्थिक चक्र को, व्यापारियों, उद्योगपतियों छोटे-बड़े कामगारों और मजदूरों, श्रमिकों के जीवन चक्र को मानो ठहरा-सा दिया था। छोटे-बड़े औद्योगिक धन्धों के बन्द होने का त्वरित और प्रत्यक्ष प्रभाव उन छोटे-बड़े श्रमिकों (मजदूरों) की जिन्दगी पर पड़ा, जो रोज कमाते थे और उससे अपने परिवार को पालते थे। यहाँ मैं यह

जरूर लिखना चाहूँगा कि सरकार और समाज को इस सत्य का सामना करना पड़ा कि देश की आर्थिक धुरी कहे जाने वाले इन औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिष्ठानों की ये छोट-बड़े मजदूर, श्रमिक ही मुख्य धुरी हैं, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। किन्तु इनके ठप्प होते ही इनके सामने रोजी-रोटी का अन्तहीन संकट उत्पन्न हो गया है।

बस फिर क्या था! जो जिस देश का जिस देश में, जिस प्रदेश का जिस देश में, जि.. जनपद का जिस जनपद में और जिस नगर, शहर में जिस नगर, शहर का व जिस ग्राम में जिस ग्राम का कोई भी कर्मचारी, श्रमिक व मजदूर था, कामगार था, वो उस देश से अपने देश की ओर, उस प्रदेश से अपने प्रदेश की ओर, उस जनपद से अपने जनपद की ओर, उस नगर से अपने नगर की ओर, उस शहर से अपने शहर की ओर और उस ग्राम से अपने ग्राम की ओर पथ के शूलों की परवाह किए बगैर, अंधेरे-उजाले की परवाह किए बगैर, भूख प्यास की परवाह किए बगैर, जीवन-मृत्यु की परवाह किए बगैर, सुख-दु:ख की परवाह किए बगैर, सर्दी-गर्मी-बरसात की परवाह किए बगैर, अनुकूलता- प्रतिकूलता की परवाह किए बगैर और शयन-जागरण की परवाह किए बगैर निकल पड़े।

सारी दुनियाँ को अपने शिकंजे में लेने वाला ये कोरोना का दैत्य भारत में हजारों की जान ले चुका है तथा इससे संक्रमितों का आंकड़ा लाखों में है और यह अदृश्य यमदूत दिन-प्रतिदिन अपने अदृश्य दायरे को बढ़ाता ही जा रहा है। पूरा विश्व इसके सामने अपने आपको एक प्रकार से लाचार तथा निस्सहाय-सा अनुभव कर रहा है। सरकार के सामने दोहरी चुनौती है कोरोना को नियन्त्रित कर उसका कोई स्थायी उपचार तथा देश-विदेश तथा प्रदेशों से पलायन कर रहे असंख्यों मजदूरों, श्रमिकों तथा कामगारों के रोजी-रोटी की व्यवस्था सुनिश्चित करना। निस्सन्देह केन्द्र सरकार व प्रदेश सरकारें अपने-अपने ढ़ंग से अपने राज्यों में इस दिशा में प्रयास कर रही हैं। बावजूद इसके अनेकों श्रमिक आज भी बेरोजगार घूम रहे हैं। कोरोना संक्रमण की चुनौती केवल सरकार के सामने ही नहीं है; ये चुनौती हम सबकी सामूहिक चुनौती है। हम सबको मिलकर इससे जूझना है।

इस संक्रमण को किसने फैलाया? क्यों फैलाया? किसने इस संक्रमण को धार देने का काम किया? किसने अपने को इस संक्रमण से छिपाने की धृष्टता की? जो इस महामारी से वीरता और धीरता के साथ जूझ रहे थे; उनके साथ दुर्व्यवहार करने वाले कौन थे? कौन थे वे लोग; जो केन्द्र और राज्य की आँखों में धूल झोंक कर एक वर्ग के खिलाफ, एक वर्ग के लोग एक विशेष स्थान पर इकट्ठा होकर तथाकथित धर्मनिरपेक्षता की आड़ लेकर एक अभियान विशेष चला रहे थे? कौन थे वे लोग; जो यह कहकर अपने मतानुयायियों को राष्ट्र के विरुद्ध भड़का रहे थे कि कोरोना जैसी कोई महामारी अथवा संक्रमण नहीं है, यह एक मत के इबादतगाहों को बन्द करने की दूसरे मत के लोगों की साजिश है? कौन थे वे लोग जो एक स्थान विशेष पर यात्रा के नाम पर आए देश-विदेश के लोगों को यह कह रहे थे कि अपने मजहब के प्रचार में यदि अपनी जान इबादतगाह में जाती है तो जान गंवाने का इबादतगाह से अच्छी और कोई जगह नहीं है? कौन थे वे लोग जो चोरी-चोरी चुपके-चुपके लोगों के मस्तिष्क में मजहबी कट्टरता का और देश के खिलाफ षड्यन्त्र का जहर घोल रहे थे? कौन थे वे लोग जो सरकार जब संक्रमण और महामारी की चुनौती से दो-चार हो रही थी और उससे जूझ रही थी तब एक और चुनौती सरकार के सामने खड़ी कर

रहे थे? और कौन थे वे लोग जो अपनी साम्प्रदायिक करतूतों से राष्ट्र की एकता व अखण्डता को और संवैधानिक व्यवस्था को ललकार रहे थे? कौन हैं वे लोग जो बड़ी निर्लज्जता के साथ गिरफ्तारी से बचते हुए देश की जाँच एजेंसियों के साथ आँख-मिचौली का खेल खेल रहे थे? इस पर पाठ स्वयं विचार करें।

इस संक्रमण ने हमारे सामने किस प्रकार की चुनौतियों को पैदा किया है और उनसे हमें किस प्रकार जूझना है। इस संक्रमण का स्थायी उपचार कैसे हो? इसका स्थायी और प्रभावी उपचार ही प्रथम चुनौती है। यद्यपि इस दिशा में देश और विदेशी सरकारें अपने-अपने शक्ति और सामर्थ्य से प्रयास कर रही हैं लेकिन तत्काल वो उपचार सुलभ होगा; इसकी अभी संभावना कम ही है। कुछ दवाएँ हैं जिनको इस संक्रमण के उपचार में सहयोगी माना है और हमारे देश ने इस दवा का भारी मात्रा में निर्यात भी किया है किन्तु उपरोक्त दवा इसका स्थायी उपचार हो सकता है इस पर वैज्ञानिकों का अन्वेषण चल रहा है।

इसके बाद महत्त्वपूर्ण प्रश्न मानव की जीवन शैली का है। प्रधानमंत्री ने एक बार अपने उद्‌बोधन में कहा था कि "इस कोराना संक्रमण से पहले की हमारी जो जीवनशैली थी; इस संक्रमण के बाद की जीवनशैली एकदम भिन्न रहने वाली है। हमारी जीवनशैली उपभोक्तावाद से प्रभावित है।" मुझे प्रभावित नहीं अपितु उपभोक्तावाद प्रधान है; ऐसा लिखना चाहिए। उपभोक्तवाद प्रधान जीवनशैली ने हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बुरी तरह प्रभावित किया है। मैं इसे मानव जीवन की विडम्बना ही कहूँगा कि उपभोक्तावाद प्रधान अथवा भोग-विलास प्रधान जीवनशैली सम्पन्नता और कुलीनता की पहचान बन गई है। सात्त्विक खान-पान; सात्त्विक जीवनशैली, प्राकृतिक वातावरण में जीवन-यापन गरीबी का, मजबूरी का, लघुता का प्रतीक माने जाते हैं। शाकाहार और माँसाहार में विभाजित हमारी जीवनशैली ने भी हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर किया है। यही कारण है कि इस संक्रमण के कारण बहुत से लोगों (जो माँसाहार के आदि थे) ने शाकाहार को अपनाया है। कोई भी व्याधि हो वह हमेशा कमजोर को ही अपना शिकार बनाती है। जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक दृष्टि से कमजोर हैं उसे शारीरिक, मानसिक व्याधियाँ उतना ही शीघ्र अपना शिकार बनाएँगी तथा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक आत्मिक दृष्टि से जितना सबल होगा, व्याधियाँ उससे उतना ही दूर रहेंगी। संस्कृत साहित्य में कहा गया है कि-

"यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं तावज्जरो दूरतः" अर्थात् जब शरीर मानसिक, बौद्धिक दृष्टि से मनुष्य स्वस्थ और निरोग है तब-तक उससे समस्त व्याधियाँ दूर हैं। कोरोना संक्रमण ने हमारी जीवनशैली को झकझोरने के साथ-साथ ललकारा और धिक्कारा है। मैं मानता हूँ कि धिक्कार शब्द पर बहुतों को आपत्ति हो सकती है किन्तु सत्य यही है कि उपभोक्तावाद व भोग-विलास प्रधान जीवनशैली वाले मनुष्य ही इस कोरोना का ठिकाना बने हैं और यदि हमने अपनी जीवनशैली में परिवर्तन नहीं किया तो ऐसे राष्ट्रों को और राष्ट्रवासियों को कोरोना संक्रमण अपना स्थायी ठिकाना बना लेगा। श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेश करते हुए इसी बात की ओर संकेत करते हुए कहा है कि-

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

संयमित खान-पान, संयमित क्रिया-कलाप और संयमित सोना-जागना मनुष्य जीवन के समस्त दुःखों को दूर करने वाला होता है। इसमें सन्देह नहीं है।

❑❑

अन्तःकरण (चित्त) का सदुपयोग-२

(महात्मा चैतन्य स्वामी)

परम दयालु परमात्मा ने हमें अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार) के रूप में जो नियामत दी है, उसका मूल्य आंकना असंभव सा ही है। यहाँ हम चित्त की चर्चा करेंगे। चित्त को भूत एवं भविष्य का स्मरण रखने वाला एक उपकरण समझा जा सकता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषयों गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द का ज्ञान इसी से होता है। मन का संकल्प-विकल्प व्यवहार, बुद्धि का सन्देह व निर्णय जैसे भूतकाल में अनुभव किए, वर्तमान में किए जा रहे हैं और भविष्य में किए जाने वाले हैं या जिन पर लक्ष्य व ध्यान है, ये सब चित्त के अधीन हैं...योगदर्शन में (यो०द० १-३०) चित्त को विक्षिप्त करने वाले नौ विघ्न बताए गए हैं-

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥

व्याधि-शारीरिक व मानसिक रोग, **स्त्यान**-चित्त की अकर्मण्यता (तमोगुण के कारण सत्य कर्मों के प्रति प्रीति न रहना), **संशय**-योगाभ्यासी को योग का फल तुरन्त तो मिलता नहीं है...अतः यह सन्देह होना कि इसका फल मिलेगा भी या नहीं...मुझसे यह कार्य हो भी सकेगा या नहीं...यह सन्देह चित्त को विक्षिप्त कर देता है..., **प्रमाद**-योग के साधनों के प्रति उपेक्षा-भाव रखना उनका विधिवत् अनुष्ठान न करना... मात्र औपचारिकता भर के लिए करना..., **आलस्य**-सामर्थ्य होते हुए भी योग-साधनों के अनुष्ठान तमोगुण के प्रभाव के कारण प्रवृत्त न होना..., **अविरति**-सांसारिक विषयों के प्रति रुचि बने रहना जिससे तृष्णादि दोषों के कारण वैराग्य का अभाव हो जाना व योग-साधना में प्रीति न होना..., **भ्रान्तिदर्शन**-मिथ्या-ज्ञान का होना, गुरुओं, परमात्मा, ऋषियों आप्त लोगों की बातों पर पूरी निष्ठा न होना... सुख में दुःख और दुःख में सुख की भावना, **विद्या**-अविद्यादि का भेद न जानना... **अलब्धभूमिकत्व**- समाधि की उत्कृष्ट स्थिति के लिए पर्याप्त समय लगता है मगर कुछ भी उपलब्धि न होने के कारण निराशा के भाव पैदा हो जाना..., **अनवस्थितत्व**-कुछ थोड़ी-बहुत उपलब्धियाँ होने पर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण समझकर अभ्यास छोड़ बैठना. ..अथवा पूर्ण सफलता न होने से योग-साधना में चित्त का न लगाना..

महर्षि दयानन्द जी ने इन्हें उपासना योग का शत्रु कहा है-'ये विघ्न नव प्रकार के हैं। (व्याधि) एक व्याधि अर्थात् धातुओं की विषमता से ज्वर आदि पीड़ा का होना, दूसरा (स्त्यान) अर्थात् सत्यकर्मों में अप्रीति, तीसरा (संशय) अर्थात् जिस पदार्थ का निश्चय किया चाहे उसका यथावत् ज्ञान न होना, चौथा (प्रमाद) अर्थात् समाधि साधनों के ग्रहण में प्रीति और उनका विचार यथावत् न होना, पाँचवाँ (आलस्य) अर्थात् शरीर और मन में आराम की इच्छा से पुरुषार्थ छोड़ बैठना, छठा (अविरति) अर्थात् विषय-सेवा में तृष्णा का होना, सातवाँ (भ्रान्तिदर्शन) अर्थात् उल्टे ज्ञान का होना जैसे-जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि करना तथा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वरभाव करके पूजा करना, आठवाँ (अलब्धभूमिकत्त्व) अर्थात् सामाधि का प्राप्ति न होना और नववाँ (अनवस्थित्त्व) अर्थात् समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना, ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना योग के शत्रु हैं। (ऋ०भा०भू० उपासना०)

योगदर्शन (१-३१) में कहा गया है कि "आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेद से दुःख तीन प्रकार का है। जिससे पीड़ित होकर प्राणी उसके नाश के लिए प्रयत्न करते हैं... ये दुःखादि

विक्षेपों के साथ उत्पन्न होते हैं अत: विक्षिप्त चित्त वाले पुरुष को ही ये होते हैं और जो एकाग्रचित्त योगी हैं उनको ये उत्पन्न नहीं होते।" उपरोक्त त्रिविध तापों के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं (स०प्र०प्रथम समु०)

'त्रिताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दु:ख हैं। एक-**'आध्यात्मिक'** जो आत्मा-शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा-**'आधिभौतिक'** जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है। तीसरा-**'आधिदैविक'** अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है।' ये दु:ख विक्षिप्त चित्त वाले को होते हैं और चित्त को विक्षिप्त करने वाले नौ विघ्नों की चर्चा हमने ऊपर की है। इन विघ्नों के बारे में महर्षि लिखते हैं (ऋ०भा०भू०)- 'अब इनके (व्याधि आदि विघ्नों के) फल लिखते हैं (दु:खदौर्म०) अर्थात् दु:ख की प्राप्ति, मन का दुष्ट होना, शरीर के अवयवों का कम्पन्न, श्वांस और प्रश्वांस के अत्यन्त वेग से चलने में अनेक प्रकार के क्लेशों का होना, जो कि चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं, ये सब क्लेश अशान्त चित्त वाले को प्राप्त होते हैं, शान्त चित्त वाले को नहीं।' योगदर्शन (१-३२) में इन विघ्नों को दूर करने के उपाय बताए हैं... महर्षि दयानन्द जी इन विघ्नों को दूर करने का रामबाण उपाय बताते हुए लिखते हैं (ऋ०भा०भू०)- '(तत्प्रतिशोधा०) जो केवल एक अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व है, उसी में प्रेम और सर्वदा उसी की आज्ञा पालन में पुरुषार्थ करना है, वही एक उन विघ्नों के नाश करने को वज्ररूप शस्त्र है, अन्य कोई नहीं। इसलिए सब मनुष्यों को अच्छी प्रकार प्रेम-भाव से परमेश्वर के उपासना योग में नित्य पुरुषार्थ करना चाहिए कि जिससे वे सब विघ्न दूर हो जायें।'

महर्षि दयानन्द जी (ऋ०भा०भू०) लिखते हैं-'इसलिए जब-जब मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहे, तब-तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन करके उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारम्बार करके अपने आत्मा को भली-भांति से उसमें लगा दें।' योगदर्शन में चित्त-वृत्ति के रोकने को योग कहा है-**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:॥** (१-२) चित्त की वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। महर्षि इस सूत्र के भाव इस प्रकार हैं (ऋ०भा०भू०) लिखते हैं-'चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटाके शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष के प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फंसकर उस परमात्मा से दूर हो जाना।' और सत्यार्थप्रकाश (नवम् समुल्लास) में इस सूत्र को इस प्रकार विवेचित करते हैं-

'मनुष्य रजोगुण तमोगुणयुक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो, पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना।' इस प्रकार चित्त की एकाग्रता से क्या उपलब्धि होगी इस सम्बन्ध में योगदर्शन में (१-३) में कहा गया है-**तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्॥** इस सूत्र के भाव महर्षि जी इस प्रकार (ऋ०भा०भू०उपा०) व्यक्त करते हैं-'(प्रश्न) जब वृत्ति बाहर के व्यवहारों से हटाके स्थिर की जाती है, तब कहां पर स्थिर होती है? इसका उत्तर यह है कि (तदा द्र०) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर को चलके कहीं स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है।'

❑❑

तद्विद्यामयत्वाद् वेदानामनित्यत्वं नैव घटते

(वेद उसकी विद्यास्वरूप होने से अनित्य नहीं हो सकते)

(आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय मो०: ८३६८४४००४७)

[पाठक वृन्द! हमने इस लेख में 'विद्यामयत्व' का महत्त्व दर्शाया है। 'विद्यामयत्व' इस हेतु से महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदों का नित्यत्व सिद्ध किया है। इसी से कितने ही पुरुषों की शङ्का का निवारण हो जाता है जो कि शब्द, पद और वाक्यों के योग होने से वेदों का अनित्यत्व मानते हैं।]

ईश्वर के वचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो अन्य के वचन से नहीं हो सकता। क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रान्तरहित सत्य होता है वैसा अन्य का नहीं। और जो कोई वेदों के अनुकूल अर्थात् आत्मा की शुद्धि, आप्त पुरुषों के ग्रन्थों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जानके कहता है, उनका वचन भी सत्य ही होता है। महर्षि के ये शब्द हमारे लिए सदा वेद विषयक चिन्तन के लिए चक्षु के समान सर्व सिद्धान्त दर्शक हैं। महर्षि के लिखे प्रतिवर्ण अत्यन्त साधुवाद के योग्य हैं। हम स्थिर चित्त होकर उनके वचन को यथार्थ सत्य मानकर ही विभिन्न शास्त्रों से पुष्ट करने में अपनी धन्यता मानते हैं। अब हम इस 'विद्यामयत्व' हेतु को प्रश्नोत्तर रूप में प्रिय पाठकों के मोदार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रश्नः- स्वामी दयानन्द ने विद्यामयत्व हेतु से वेदों की नित्यता सिद्ध करनी चाही है, वह निरर्थक है?

उत्तरः- आपका यह कथन ही निरर्थक है। विद्यामयत्व उस ईश्वर का सामर्थ्य है और उसकी सामर्थ्य नित्य होती है। **'तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामनित्यत्वं नैव घटते'** इस 'तत्' शब्द से अभिप्राय है कि इससे पूर्व कथन है कि शब्द द्विविध हैं-नित्य और कार्य भेद से। इनमें से जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञानस्थ हैं वे सब नित्य ही होते हैं और जो हम लोगों की कल्पना से प्रसूत हैं, वे कार्य्य हैं। इसमें भी एक हेतु ऐसा है जो ऋषि ही लिख सकते हैं, अन्य कोई कितना ही बड़ा विद्वान् हो-लिखना तो बड़ी बात है सोच भी नहीं सकता, वह हेतु है- जिसका ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं, उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है। इस कारण से अर्थात् शब्द सामर्थ्य के नित्यत्व रूप हेतु से वेद सर्व विद्यान्मय है।

प्रश्नः- प्रलय में स्थूल रूप से अविद्यमान वेदों के सूक्ष्मरूपेण विद्यमान होने से नित्यत्व कहेंगे,तब सत्कार्यवाद की रीति से सारे ही जगत् के सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहने से नित्यता हो जायेगी फिर वेदों के नित्यत्व में किसी विषेशता की अनुत्पत्ति ही रहेगी?

उत्तरः- तन्न युक्तम्- यह कथन ठीक नहीं। उपादान रूपा प्रकृति के परिणामी होने से प्रकृति-जन्य कार्य जगत् के संयोजन-वियोजन हो जाने पर जगत् की अनित्यता है। परन्तु वेदों के ईश्वरीय ज्ञान रूप गुण होने तथा निरवयव होने से नित्यता है, यह विशेषता है।

सत्कार्यवाद तो प्रकृति से जन्य कार्य जगत् में ही घटित होता है, जैसा कि सत्कार्यवाद शब्द से ही ध्वनित हो रहा है। जो कार्य रूप में आकर अपने उपादान रूप करण में तद्रूप से रहे। किन्तु वेद उस प्रकार से कार्य नहीं है और न कोई इसका उपादान कारण है। अतः सत्कार्यवाद यहाँ पर सङ्गत नहीं होता उसका प्रसङ्ग नहीं होने से।

प्रश्नः- यदि वेद सर्वदा विद्यमान हैं तो उनकी उत्पत्ति का कथन ही व्यर्थ है। तथा स्वामी दयानन्द के **'स्वविद्यातः सृष्टत्वात्'** का भी विरोध है?

उत्तरः- यहाँ पर वेदोत्पत्ति से अभिप्राय मीमांसा के

दृष्टिकोण से समझना होगा **'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरिक्तश्चार्थेऽनुपलब्धेः तत्प्रमाणं वादरायणस्यानपेक्षत्वात्।** (मी० १/१/५) अर्थात् वेद वाक्य में स्थित प्रत्येक पद का अपने अपने अर्थ के साथ स्वाभाविक अर्थात् नित्य सम्बन्ध है। उसी से वह धर्म के यथार्थ ज्ञान का साधन है क्योंकि ईश्वर की ओर से उसका उपदेश हुआ है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो अर्थ उपलब्ध नहीं होता उसमें उसका व्यतिरेक नहीं दीखता। वादरायण के मत में यह वाक्य अपने धर्म की सत्यता के लिए प्रत्यक्षादि प्रमाणों की अपेक्षा न रखनें से धर्म में स्वतः प्रमाण है। **उत्पत्तिर्हि भाव उच्यते लक्षणया। अवियुक्तः शब्दार्थयोभवि सम्बन्धः, नोत्पन्नयोः पश्चात् सम्बन्धः।** उत्पत्ति का अर्थ भाग या सत्ता है। वेद के शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अवियुक्त रहता है। उत्पन्न होने के बाद सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि यह सम्बन्ध स्वाभाविक है। उत्पत्ति शब्द का अभीष्टार्थ ज्ञात होने पर वेदों के नित्यत्व और उत्पत्ति में कोई विरोधोक्ति नहीं है।

प्रश्नः- फिर भी एक प्रश्न और उठता है, वह यह है कि परमाणु संयोग से बने कार्य स्थूल जगत् का-परमाणु वियोग होने पर अभाव हो जाता है वैसे वेद पुस्तकों का भी अभाव हो जाता है फिर वेदों की नित्यता क्यों मानी जावे?

उत्तरः- वेद पुस्तक का नाम नहीं है और न ही शब्द अक्षरों की बनावट का नाम है। वेद तो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध स्वरूप ही है जो ईश्वर के ज्ञान में सदा वर्त्तमान रहते हैं। पुस्तकादि के अनित्य होन से ईश्वर का ज्ञान कभी अनित्य नहीं हो सकता। ईश्वर के ज्ञान में वेद कैसे रहते हैं? उत्तर- बीजाङ्कुर न्याय से नित्य बने रहते हैं। मात्र वेदों की सृष्टि में प्रसिद्धि और प्रलय में अप्रसिद्धि होती है। इस कारण से ईश्वर की विद्यामयत्व से वेदों का नित्यत्व स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि ईश्वर की विद्या नित्य है, उसकी व्यभिचार अर्थात् वृद्धि, क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती। इसीलिए वेद ईश्वर की अपनी विद्या से सृष्ट है। **'वेदानां तेनैव स्वविद्यातः सृष्टत्त्वात्'।**

प्रश्नः- जिसका ज्ञान, क्रिया स्वभाव सिद्ध और अनादि है; इस पर हमारा प्रश्न है कि ईश्वर के ज्ञान, क्रिया स्वाभाविक हैं-इससे सिद्ध है कि उसकी प्रत्येक क्रिया स्वाभाविक नहीं है, अन्यथा स्वभाविकी यह विशेषण व्यर्थ हो जायेगा? कोई विशेष क्रिया ही स्वाभाविकी है-प्रत्येक क्रिया नहीं?

उत्तरः- यह नितान्त अज्ञानमूलक सोच है कि ईश्वर की सब क्रियाएँ स्वाभाविकी=नित्य नहीं हैं। जिसका ज्ञान स्वाभाविक हैं उसका बल=प्रयत्न और क्रियाएँ सब स्वभाविक है। किसी 'स्वाभाविकी' इस विशेषण के उपस्थान से क्या स्वाभाविक क्रिया के अभाव में परमात्मा की किसी अन्य क्रिया की भी संभावना की परिकल्पना की जा सकती है? सर्वथा उसके असम्भव होने से नहीं की जा सकती! जहाँ परमेश क्रिया परिणामि प्रकृति को चेष्टा देती है, वहाँ उस प्रकृति अर्थात् उपादान से उत्पन्न वस्तु की अनित्यता होती है, पर वह चेष्टा देने की क्रिया तो नित्य एवं स्वाभाविक है। अतः ऐसा सोचना अज्ञान मात्र ही है। क्योंकि आप ईश्वर के विद्यामयत्व से वेदों के नित्यत्व सिद्धि में बाधा उत्पन्न करना चाहते हैं, वह आपका प्रज्ञाबाध ही है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई बाध हो नहीं सकता। बाध किसको कहते हैं? उत्तर- बाध उसको कहते हैं कि जिसका साध्याभाव प्रमाणान्तर से निश्चित है, वह बाधित कहलाता है। उदाहरण- जैसे वह्नि अनुष्ण है, द्रव्य होने से; यहाँ वह्नि के अनुष्णत्व में साध्य उसका अभाव उष्णत्व स्पर्श द्वारा प्रत्यक्ष ही ग्रहीत है। परन्तु प्रकृति में तो वेदों का नित्यत्व किसी प्रमाणान्तर से बाधित नहीं है। **'तद्विद्यामयत्वात् वेदानां नित्यत्वमेव'।**

प्रश्नः- परमेश्वर के सर्वविद्यामयत्व से वेदों का नित्यत्व मानते हैं तो न्याय की दृष्टि से इसमें स्वरूपासिद्ध दोष उपस्थित होता है। इसका समाधान क्या है?

उत्तरः- अत्र भवतः न्याय शास्त्रानभिज्ञत्वमेव द्योत्यते-कथं-अभेदम् वधेयं यत् स्वरूपसिद्धौ हेत्व

भाववान् पक्षो भवति-अर्थात् यहाँ आपका न्यायशास्त्र अनभिज्ञता ही द्योतित होती है क्योंकि स्वरूपसिद्ध का लक्षण है कि पक्ष में हेतु का अभाव अर्थात् पक्ष में साध्य के अभाव से ही दोष होता है। जिस प्रकार शब्द नित्य है चाक्षुषत्व होने से रूप के समान। यहाँ पर चाक्षुषत्व हेतु पक्ष में घटित नहीं है क्योकि शब्द श्रवण का विषय है। ऐसे ही प्रकृत में वेद नित्य हैं ईश्वर की विद्या होने से यहाँ वेद पक्ष में नित्यत्व साध्य है और नित्यत्व पूर्णतया घटित है। अतः स्वरूपसिद्ध दोष बिल्कुल भी नहीं है।

[प्रकृते च वेदो नित्यः ईश्वरस्य विद्यामयत्वात्। अत्र विद्यावत्वं हेतुः पक्षो वेदः, नित्यत्वं साध्यम्। तदा हेतोः पूर्णतया संघटनात् नास्ति स्वरूपाऽसिद्धि-दूषणं प्रत्युत भवनिवाऽत्र निरनुयोज्यानुयोग नामके निग्रह-स्थाने निगडितः]

प्रश्नः- आक्षेप यह है कि वादी-प्रतिवादी के द्वारा सम्मत हेतु से साध्य की सिद्धि हो सकती है, एक के द्वारा स्वीकृति से नहीं, ईश्वर की विद्यामयता एक के द्वारा सम्मत नहीं है अतः उभयसम्मत नहीं होने के कारण मान्य नहीं है?

उत्तरः- यह हेतु ही स्वकल्पित है कि दोनों का उभय सम्मत हेतु ही साध्य का साधक होता है। आपकी ही युक्ति से जब तक आपका यह दिया गया हेतु मेरा सम्मत नहीं है, तब तक कैसे मान्य होगा? कहीं पर भी साध्य की साधना के लिए हेतु की यह परिभाषा नही दी गई है। अतः यह अप्रामाणिक और अमान्य है।

यदि यह कहा जाए कि आपके ही हेतु लक्षण को स्वीकार करने में क्या हानि है? तो यह भी ठीक नहीं है, वैसा-मानने पर उभय सम्मत हेतु के अभाव में सभी विषय अनिर्णीत रहेंगे। जैसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है, क्योंकि सृष्टि क्रियमाण है। यह हेतु नास्तिक को कदापि स्वीकृत नहीं है, तब तो ईश्वर की सदा असिद्धि ही बनी रहेगी, जब तक कि हेतु उभयसम्मत नहीं हो जावे। प्रकृत विषय में आपको ईश्वर की विद्यामयता स्वीकृत नहीं अतः वेदों का नित्यत्व कदापि सिद्ध न हो सकेगा। किन्तु ईश्वर की सर्वविद्यावता 'शास्त्र योनित्वात्' (वे. १/१/३) आदि प्रमाणों से आचार्य शंकर आदि के द्वारा स्वीकार की गई है।

प्रश्नः- 'वेदानामीश्वरविद्यामयत्व' यहाँ विद्या शब्दरूपा या ज्ञानरूपा है?

उत्तरः- यहाँ पर 'विद्या' नित्यशब्दार्थ सम्बन्धमयी ज्ञानरूपा है।

प्रश्नः- इसमें 'मयट्' प्रत्यय प्राचुर्य अर्थ में है या स्वार्थ में? अथवा विकार अर्थ में है?

उत्तरः- 'तत्प्रकृतवचने मयट्' इस सूत्र से प्राचुर्य अर्थ में 'मयट्' प्रत्यय हो जाता है। मयड्वैतयो....। पा० ४/३/१४३ इस सूत्र से विकार या अवयव अर्थ में विशिष्यमाण शब्दार्थक 'विद्या' शब्द से 'मयट्' के विधान की अनिवार्यता शब्दार्थक 'विद्या' शब्द से प्रतीत नहीं होती। यदि कथञ्चित यह मान भी ली जाए तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि ईश्वरीय-शब्द-बाहुल्यविशिष्ट वेद है।

यदि यह कहा जावे कि अन्न-प्रचुर याग है, ऐसा करने पर अन्नातिरिक्त घृतादि विशिष्ट की प्रतीति होती है, इसी भांति वेद में भी ईश्वरीय शब्दातिरिक्त शब्द वैशिष्ट्य सिद्ध होता है। तो यह ठीक नहीं, क्योंकि **'आनन्दमयोऽभ्यासात्'** (वे. १/१/१२-१३) इन सूत्रों से जैसे मनुष्यत्व से आरम्भ कर उत्तरोत्तर, ब्रह्म का आनन्द प्राचुर्य शतगुणित है, इस शंकरभाष्य से ब्रह्मानन्द निरतिशय है, यही घोषित होता है। इस प्रकार 'अन्नप्रचुरयाग' इसके उक्त व्याख्यान को माना जाए तो शंकराचार्य के इस स्थल की संगति न हो सकेगी।

जिस कारण से ब्रह्म की आनन्द-हेतुता बताई है। **'एष एव हि आनन्दयाति**-जो आनन्दित करता है-वह प्रचुरानन्द है। जैसे लोक में जो अन्यों को धनिकत्व आपादित करता है, वह प्रचुर-धन कहलाता है। उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। जो ईश्वर उत्तरोत्तर शतगुणित विद्यावान् है वही विद्यामय है। औरों को भी

विद्यावन्त्व प्रदान करते हैं वह परमेश्वर वेद वा विद्यामय होता है। इस प्रकार ऋषि का मूल वाक्य **'तद्विद्यामयत्वाद्- वेदानामनित्यत्वं नैव घटते'** असंदिग्ध शास्त्रीय और युक्तियुक्त है। विद्यामय शब्द के प्रयोग करने में ऋषि दयानन्द का महत्वपूर्ण और विशिष्ट तात्पर्य है।

प्राचुर्य अर्थ में मयट् करने पर ईश्वर के प्रचुर शब्दों से अतिरिक्त शब्दों की भी अल्पता किसी प्रकार भी निवारित नहीं की जा सकती। ऐसा कथन भी ठीक नहीं कि प्राचार्यु कहने से तो अन्य वस्तु की सत्ता का तो बोध नहीं होता अपितु उसी प्रस्तुत वस्तु की अल्पता का निवारण किया जाता है। और न अन्य किसी प्रमाण के द्वारा ही वेद में ईश्वर के अतिरिक्त शब्दों का प्रामाण्य उपपन्न है अथवा (विद्यामयत्व)- यहाँ स्वार्थ में मयट् करने पर भी अनित्यत्व आदि दोष नहीं आते।

प्रश्नः- "मयट्' प्रत्यय के प्राचुर्य अर्थ में परमेश्वर के स्वरूप ज्ञान से अनन्तत्व की अनुपपत्ति होगी"?

उत्तरः- यह तो किसी सिरफिरे का सा ही कथन है कि ईश्वर के अन्तत्व की उपपत्ति के लिए यहाँ पर मयट् का प्रयोजन माना जा रहा है। यह बुद्धि तो धन्यवाद के योग्य है। क्योंकि वह ईश्वर के अन्तत्व की इष्टापत्ति के अनुसन्धान में प्रयत्नशील है। वेद पुस्तक रूप है, यह कथन तो 'मांसल बुद्धियों का ही अभिनन्दन-मात्र हो सकता है। इस प्रकार प्रतिकल्प में उत्पन्न होने पर वेदों में भेद होगा यह भी नहीं कहना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर के अनुग्रह से सम्पूर्ण जगत् के भी पूर्वकल्प के सदृश ही नाम और रूप उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नः- ईश्वर के ज्ञान का वेदों से कैसा सम्बन्ध है?

उत्तरः- गुणगुणी का समवाय सम्बन्ध होता है अतः यही सम्बन्ध है। ईश्वर का विषयता सम्बन्ध वेदों से नहीं है जैसा कि प्रायः लोग उद्भावित करते हैं। यदि विषयता सम्बन्ध मानें तो नित्यता का उपोद्बलक नहीं होगा । कारण यह है कि ईश्वर तो सर्वज्ञ है, तब उसके ज्ञान से समस्त वस्तुओं का सम्बन्ध रहने से सभी को नित्य मानना होगा। अतः विषयता सम्बन्ध नित्यत्व की सिद्धि नहीं हो सकती अर्थात् विषयता सम्बन्ध नित्यत्व का प्रयोजन नहीं है। अतः किसी का यह तर्क अतिराम् विचित्र और असङ्गत है कि यदि ईश्वर सब वस्तुओं को जानता है तो उन वस्तुओं की भी नित्यता होगी।

ईश्वर के ज्ञान द्वारा उपादान रूप प्रकृति से रचित वस्तुओं की नश्वरता कैसे विनष्ट हो जावेगी? वे वस्तुएं तो संयोग से उत्पन्न होती है, ईश्वर भी इसी रूप में इन वस्तुओं का ज्ञाता है कि पहले संयोग से बनती हैं और पश्चात् द्वयणुकादि के वियोग से विनष्ट हो जाती हैं। इन नश्वर वस्तुओं के समान प्रवृत्ति से उत्पन्न तो वेद है नहीं, वे ईश्वर भी सर्वज्ञता के अन्तर्गत ही है।

यदि कोई नवीन वेदांती होंगे तब तो अनेक दोष उत्पन्न हो जावेंगे। प्रथम तो इस पक्ष में ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु से अन्य वस्तु की सत्ता ही सिद्ध नहीं है। दूसरा विषयता सम्बन्ध भी उपपन्न नहीं होगा; क्योंकि वहाँ तो विषय और विषयी एक रस होगें।

वेदों के विद्यामयत्व और ईश्वरीय ज्ञान में उसके वर्त्तमान होने पर तथा शब्दार्थ सम्बन्ध नित्यत्व के उपपादन करने पर शब्दाक्षरार्थ सम्बन्ध नित्य कहने पर भी न कोई विरोध है और न असङ्गति। देखिए-

सर्वशब्दो नमोवृत्तिः, श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते।
वीचीतरङ्गन्यायेन, तदुत्पत्तिस्तु कीर्त्तिता॥
कदम्बगोमन्यायाद्, उत्पत्तिः कस्यचिन्नते।

सब शब्द आकाशवृत्तिक हैं, उत्पन्न होने पर श्रोत्र से ग्रहण किए जाते हैं। उनकी उत्पत्ति वीची तरङ्गन्याय से कही गई है। किसी के मत में कदम्ब गोत्र-न्याय से उत्पन्न होता है। उत्पन होता है या विनष्ट होता है। यह बुद्धि तो अतात्त्विकी है।

यहाँ पर शब्दार्थ सम्बन्ध में ध्वन्यात्मक शब्द गृहीत नहीं होता, इस स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए शब्द के अनन्तर

शेष पृष्ठ २७ पर

अनादि-त्रयी

(प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन अबोहर मो०: ९४१७६४७१३३)

कुरान और साम्प्रदायिक इस्लाम-

आओ अब जरा कुरान की आयतों पर दृष्टि डालें और देखें कि उन में इस विषय का कैसा विवेचन है। आधुनिक मुसलमानों का विश्वास तो वल्लभ के दर्शन अर्थात् शुद्धद्वैत से मिलता-जुलता है। परन्तु हमें इस समय मुसलमानों के मन्तव्य से काम नहीं; हमें कुरान का सिद्धान्त जानना है।

सन् १९०८ ई० में मेरठ की आर्य डिबेटिंग क्लब के उत्सव के अवसर पर मौलाना आजाद सुबहानी ने एक निबन्ध पढ़ा था। उस में आप ने लिखा था-

"धर्म को दर्शन के सिद्धान्तों से कोई लगाव नहीं। पवित्र इस्लाम ने इन जटिल समस्याओं से मनुष्यों को सदा अलग रखने का प्रयत्न किया और स्वयं भी अलग रहा। **सारा कुरान और हदीस छान मारो कहीं पर भी प्रकृति का वर्णन न पाओगे।** आत्मा के विषय में पूछा गया था। यदि उत्तर दिया जाता तो यहीं से इस्लाम में व्यर्थ-वाद की नींव पड़ती।..... इस्लाम विशेष रूप से न तो प्रकृति के सादित्व की प्रतिज्ञा करता है न अनादित्व की, क्योंकि प्रकृति का विचार स्पष्टतया कुरान और हदीस में कहीं भी नहीं।"

मौलाना शिब्ली अपनी पुस्तक "इलमुल्कलाम" में लिखते हैं-

मुतकल्लिमीन (इस्लामी युक्तिकारों) के मत में संसार का अनादित्व धर्म के विरुद्ध है परन्तु कुरान और हदीस में संसार के अनादिव्य सादित्व का कोई संकेत नहीं। साम्प्रदायिक युक्तिकार कहते हैं कि यदि संसार अनादि होगा तो परमेश्वर उस का स्रष्टा न हो सकेगा; परन्तु तत्ववेत्ताओं की दृष्टि में अनादित्व और स्रष्टत्व परस्पर विरोधी गुण नहीं। (पृ० १७३)

यह तो इन दो उद्धरणों से सिद्ध है कि शुद्धाद्वैत कुरान का सिद्धान्त नहीं, पीछे के साम्प्रदायिक युक्तिकारों की घड़न्त है। मौलाना लिखते हैं-

प्राय: यूनानी दार्शनिक संसार (प्रकृति) के अनादित्व को स्वीकार करने वाले थे। उदाहरणतया अरस्तू की रुचि भी इसी ओर थी। परन्तु संसार (प्रकृति) का अनादि होना इस्लाम के मन्तव्यों के विरुद्ध था। इसलिये उक्त विद्वान् (इब्र मसकविय:) ने यूनानियों में से उस सम्प्रदाय की सम्मति स्वीकार की जो सादित्व का मानने वाला था। (पृ० १३३)

इस से यह स्पष्ट है कि नित्य पदार्थों के सम्बन्ध में इस्लामी मन्तव्य कुरान पर आश्रित नहीं। इस्लाम के राज्य में दर्शन का मुंह रुँधा रहा है। मौलाना लिखते हैं-

मोतज़िला ने जो कुछ कहना था खुल कर रहा।.. ..इस का परिणाम यह हुआ कि उन की एक पुस्तक भी इस समय विद्यमान नहीं। (पृ० १६२)

मौलाना ने पुस्तक लिखा तो यह सिद्ध करने को है कि इस्लाम विचार की स्वाधीनता का प्रतिपादक रहा है; परन्तु पुस्तक में स्थान-स्थान पर कुफ़्र की व्यवस्थाओं तथा विचारकों के वध आदि का वर्णन आता है। किसी मुसलमान ने कभी किसी प्रकार शुद्धाद्वैत को इस्लाम का सिद्धान्त समझ लिया। बस अब इस से भिन्न मत रखना जान पर खेल जाना था।

हम कुरान के अनुशीलन से इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि कुरान वेद की तरह बहुत्व-वादी है। इस के नित्य द्रव्य भी वही तीन वर्ग हैं जिन्हें वेद में **"त्रय: केशिन:"** कहा है।

साभार- कुरान वेद की ठण्डी छाओं में

❑❑

दो सनातन सत्ताएँ – शंका समाधान-२

(पं० रामचन्द्र जी देहलवी)

प्रश्न- यह दो प्रकार की पूर्णता कौन सी है?

उत्तर- किसी पदार्थ का सबसे बड़ा और सबसे छोटा होना ये दो पूर्णताएँ हैं।

प्रश्न- सबसे बड़ेपन तथा सबसे छोटेपन से पूर्णता का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर- सबसे बड़े में पूर्णता है कि उससे कोई बड़ा नहीं हो सकता। और सबसे छोटे में यह पूर्णता है कि उससे छोटा कोई नहीं हो सेकता।

प्रश्न- इस पूर्णता से नित्यता का क्या संबंध है?

उत्तर- यह पूर्णता विभाग के योग्य न होने से नित्य स्थिर रहती है इसलिए पूर्णता और नित्यता का **अटूट सम्बन्ध** है।

प्रश्न- इस दृष्टि से तो दो ही पदार्थ अनादि होने चाहिये, परन्तु स्वामी जी ने कहीं तीन पदार्थ अनादि लिखे हैं और कहीं पाँच। सीधे सादे मन्तव्य में यह तीन-पाँच कैसी?

उत्तर- दृष्टि से दो पदार्थ नहीं प्रत्युत दो प्रकार के पदार्थ अनादि होने चाहिये चाहे वे गिनती में दो से अधिक हों।

प्रश्न- गिनती में दो से अधिक होने का क्या कारण है?

उत्तर- जगत् में जड़ तथा चेतन दो प्रकार के पदार्थों का होना गिनती की विशेषता का कारण है। जड़ पदार्थों में सबसे बड़ा आकाश है और सबसे छोटा परमाणु है और चेतन पदार्थों में सबसे बड़ा ईश्वर है और सबसे छोटा जीवात्मा है।

प्रश्न- इस प्रकार से तो चार पदार्थ अनादि होते हैं। तीन तथा पाँच फिर भी सिद्ध नहीं होते?

उत्तर- शास्त्रों में इन्हीं पदार्थों की गणना भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। पहले-जड़ और चेतन की दृष्टि से दो होते हैं - प्रकृति और पुरुष।

दूसरे- (जड़ में) प्रकृति और (चेतन में) ईश्वर तथा जीव की गणना की जावे तो तीन पदार्थ होते हैं।

तीसरे- (जड़ में) आकाश व वायु तथा (चेतन में) जीव तथा ईश्वर से चार पदार्थ होते हैं और

चौथे- (जड़ में) आकाश, काल व परमाणु तथा चेतन में जीव, ईश्वर की गणना से पाँच पदार्थ होते हैं। मूल तत्त्व में वस्तुतः कोई भेद नहीं पड़ता। जगत् के उपादान कारण में आकाश, काल, दिशा व प्रकृति के परमाणु सम्मिलित हैं। इन्हीं को भिन्न-भिन्न दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार से गिना गया है।

प्रश्न- क्या नित्य पदार्थ का अनुपम होना आवश्यक है?

उत्तर- हाँ, आवश्यक है परन्तु केवल महत् परिणाम् वालों का, जैसे चेतनों में परमात्मा और जड़ों में आकाश दोनों ही अनुपम हैं, परन्तु अणु परिणाम वालों में अनुपमता नहीं होती क्योंकि वे एक ही प्रकार के असंख्य होते हैं। जैसे जीव तथा परमाणु।

प्रश्न- यदि जीव तथा प्रकृति अनादि हैं तो परमात्मा के सादृश ये भी परमात्मा ही ठहरें और आर्यसमाज पर तीन परमात्मा मानने का दोष लगता है?

उत्तर- हम यह नहीं मानते कि प्रत्येक नित्य पदार्थ परमात्मा होता है। हम तो यह मानते हैं कि जो ईश्वर होता है वह अवश्य अनादि होता है। जहाँ तक फ़ारसी अरबी के 'खुदा' शब्द के शब्दिक अर्थों का सम्बन्ध है वहाँ तक तो हम तीन खुदा मानने में कोई दोष नहीं मानते हैं क्योंकि खुदा शब्द के अर्थ **'खुद आयन्दा' स्वयं आने वाला है जिसकों आर्य भाषा में स्वयंभू कहते हैं।** हमारी मान्यता के अनुसार तीनों स्वयंभू है अर्थात् अपनी सत्ता की स्थिरता में तीनों स्वतन्त्र हैं। इसलिये तीनों खुदा (स्वयंभू) हैं। परन्तु जब खुदा का अर्थ मालिक अथवा साहब' लिया जाय तो हम खुदा एक ही मानने वाले हैं जो जीव व प्रकृति का स्वामी है।

प्रश्न- ऐसा मानने से शिर्क लाजिम् आता है (साझा सिद्ध होता है।) ईश्वर की सत्ता व गुणों में वहदत (अद्वितीयता) कायम (स्थिर) नहीं रहती?

उत्तर- एक अथवा दो गुणों के मिल जाने से दो से भिन्न-भिन्न पदार्थ एक नहीं हो सकते और न ही उनमें साझा अनिवार्य हो जाता है। यदि ईश्वर के सदृश कोई दूसरा ईश्वर नहीं है तो वह अनुपम है तथा उसके समान कोई दूसरा नहीं है। एक अथवा दो गुणों की समानता से साझा अनिवार्य होता हो तो इस्लाम व ईसाइयत का खुदा भी शिर्क (साझे) से न बचेगा क्योंकि कुरान में खुदा का अपने आपको परम दयालु व ***खैरुर्राजकीन्*** (परम पोषक), उत्कृष्ट उत्पादक तथा परम वंचक कहना यह सिद्ध करता है कि वह अल्लाह रहीमियत (दया), राज़िकयत (पोषण), खालिकियत (उत्पत्ति) व मक्र (छल)-इन गुणों में अल्लाह व रूह (जीवात्मा) दोनों शरीक (सम्मिलित) हैं। केवल गुणों की उत्कर्षता में परमात्मा में जीव की तुलना में बड़प्पन है विशेषता है।

परमात्मा को प्रत्येक युग (काल) में और प्रत्येक स्थान में होने से काल व स्थान भी अनादि सिद्ध होते हैं। फिर अनादित्व में वे खुदा के साझीदार (शरीक) क्यों नहीं?

कुरान सूरतुन्नुर रकू पांच आयत 35 में खुदा के प्रकाश की उपमा ताक चिराग व कंदील (शीशे का बड़ा लैम्प) से दी है; सूरतुश्शूरा रकू 2 आयत ग्यारह (11) में लिखा है कि **"कोई वस्तु भी उस जैसी नहीं"** इससे सिद्ध है कि कुछ गुणों की समानता से कोई वस्तु खुदा के तुल्य (समान) और शरीक (साझीदार) नहीं हो सकती है। अन्यथा उपर्युक्त आयतों के भावों में परस्पर विरोध मानना पड़ेगा।

प्रश्न- जब अनादित्व के गुण में तीनों पदार्थ समान हैं तो **जीवात्मा ही ईश्वर की उपासना क्यों करे? ईश्वर भी जीवात्मा की उपासना क्यों न करे?** क्या ईश्वर में कोई विशेष विशेषता है?

उत्तर- केवल एक ही गुण में तो तीनों में समानता है।[1] इसके अतिरिक्त और कई गुण परमात्मा में हैं उन गुणों से परमात्मा में विशेषता है।

प्रश्न- वे कौन-कौन से गुण हैं जो विशिष्टता का कारण हैं?

उत्तर- शेष सब गुण ही विशिष्टता का कारण हैं।

प्रश्न- वे विशेष गुण कौन-कौन से हैं जिनके कारण ईश्वर (खुदा) को उपास्य (माबूदियत) का स्थान प्राप्त है?

उत्तर- सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, आनन्द-स्वरूप, न्यायकारी, दयालु, पवित्र और बिना बदले (मुआवजा) के सब जीवों का शुभचिन्तक होने के कारण परमात्मा को उपास्य होने का गौरव अथवा स्थान प्राप्त है।

प्रश्न- 'इबादत' (पूजा-भक्ति) शब्द के क्या अर्थ हैं?

उत्तर- इसके अर्थ पूजा और बन्दगी है। परन्तु इसका वास्तविक अभिप्राय ईश्वर को पहचानना (मारफते इलाही) तथा ईश्वरीय गुणों (सिफाते इहालिया) से अपने मन व आत्मा को प्रकाशित करके ईश्वरीय आनन्द (सरूरे ऐज़दी) में डुबकी लगाकर स्वयं को आनन्दित अथवा निमग्न करना है।

प्रश्न- जीवात्मा अनादि होने पर भी उन गुणों से वञ्चित क्यो हैं जिनके कारण ईश्वर (खुदा) को उपास्य (माबूदियत) का सथान प्राप्त है?

उत्तर- इसलिए कि जीवात्मा अनादित्व की उस कोटि से है जिसमें 'सबसे छोटी चीजें दाखिल (सम्मिलत) हैं। परमात्मा सबसे बड़े पदार्थों की कोटि में से है।'

प्रश्न- परमात्मा (खुदा) इनका स्वामी (मालिक) कैसे बन बैठा?

उत्तर- अपने गुणों व योग्यता (इल्म व हुनर) के अपार होने के कारण से तथा उनके समुचित प्रयोग (बजा इस्तमाल) से वह इनका स्वामी बना हुआ है। यह तो सुस्पष्ट ही है कि चेतन का जड़ पर, विद्वान् का मूर्ख पर तथा बलवान् का निर्बल पर स्वाभाविक अधिकार (कुदरती कब्जा) होता है। परमात्मा में जीवात्मा व प्रकृति की अपेक्षा अत्यधिक गुण हैं। अतः परमात्मा इनका स्वामी[1] है।

प्रश्न- डाकू भी तो अपने इल्म व हुनर (गुणों व कौशल) के कारण दूसरे के धन व सम्पदा पर अधिकार कर लेता है फिर डाकू व परमात्मा (खुदा) में क्या भेद हुआ?

उत्तर- डाकू अपनी योग्यता व गुणों का समुचित प्रयोग नहीं करते परन्तु भगवान् करता है इसलिये वह डाकू नही कहला सकता। परमात्मा का प्रत्येक कर्म (सम्पूर्ण व्यवहार) अपनी प्रजाजीवों के उत्थान व क्ल्याण के लिये ही होता है। उसका अस्तित्व (जात) सर्वथा पवित्र व सब प्रकार से आवश्यकता हीन (बेनियाज़) है। उससे किसी प्रकार के अन्याय व अत्याचार का भय व आशंङ्का ही नहीं।

प्रश्न- हमने तो देखा है कि जो व्यक्ति जिस वस्तु को उत्पन्न करता है वही उस पदार्थ का वास्तविक स्वामी होता है। वह उसके हाथ की कमाई होती है?

उत्तर- उत्पन्न करने व हाथ से-परिश्रम से कमाने का अर्थ ही यह है कि अपने गुणों व कौशल (इल्मों हुनर) से कोई संसार में उपयोगी लाभप्रद कार्य करके सम्पत्ति अर्जित करे।

प्रश्न- ज्ञानी अपनी ज्ञान से, कलाकार अपने कला से, व्यापारी अपने व्यापार से और सेवक अपनी सेवा से धनोपार्जन करता है तथा उससे अपनी आवश्यकतायें पूरी करता है। इन सब कार्यों से ज्ञान व गुणों का समुचित प्रयोग ही तो कमाई का धनोपार्जन का कारण है?

उत्तर- परमात्मा को अपने लिये किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है वह तो अपने ज्ञान व कौशल से दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। पूर्ण होने का प्रयोजन (चाह) ही यह है कि वह अपने कौशल-पूर्णता (कमाल) से, उनको जो उससे छोटे हैं लाभान्वित करे।

प्रश्न- फिर वह वस्तु ही क्या रह जाती है जिसका परमात्मा स्वामी है?

उत्तर- वह पदार्थ प्रकृति (माद्दा) ही है जिसका कि वह निःस्वार्थ स्वामी है! अर्थात् उसके प्रत्येक प्रकार के उपयोग प्रयोग का उसे पूर्ण अधिकार है जिससे कि उसकी प्रजा (जीवों) को लाभ पहुँचे। जिस प्रकार सोना, चाँदी, पत्थर, लकड़ी, वस्त्र इत्यादि संसार के समस्त भौतिक पदार्थ लोग स्वयमेव एक दक्ष व प्रामाणिक (॥श्रठ्ठद्मह्यह्ल) शिल्पी (कारीगर) को सौंप देते हैं ताकि वह इन वस्तुओं से उनकी आवश्यकता की सामग्री तैयार कर दे। इसी प्रकार सारी प्रकृति परमात्मा के पास है जिससे वह अपनी प्रज्ञा (जीवों) के लिये जीवन की आवशकताओं की सामाग्री पैदा करता रहता है। क्योंकि ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं अतः उसे कोई पारिश्रमिक नहीं चाहिये। अपने असीम ज्ञान व अनुपम रचना तथा निष्फलङ्क निस्वार्थता से प्रकृति पर तसर्रुफ (अधिकार व्यय-प्रयोग) ही उसकी मालकियत (स्वामित्व) का कारण है।

प्रश्न- प्रकृति पर परमात्मा के अधिकार का कारण तो जान लिया तनिक जीवों पर अधिकार (प्रभुत्व) का कारण बतायें?

उत्तर- जीव पर प्रभुत्व का कारण वही है जो प्रकृति पर अधिकार का है। जीवात्मा अपनी उन्नति व अवनति-उत्थान और पतन के विषय में कुछ भी नहीं जानता। उसको यह भी तो ज्ञान नहीं कि उत्थान तथा पतन क्यों होता है? इसके ज्ञान के लिये उसको परमात्मा के ज्ञान व मार्गदर्शन की आवश्यकता है जिस पर चलने से उसका उत्थान व कल्याण होता है तथा उसका उल्लंघन करने से उसका पतन व हानि होती है। जिस प्रकार गुरु को, शिक्षक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह बालक शिष्य को उसकी उद्दण्डता के लिए दण्ड दे, पढ़ाई में पिछड़ने पर, प्रमाद करने पर निचली श्रेणी में भेज दे तथा परिश्रम करने पर ऊपर की कक्षा में पहुँचा दे-इसी प्रकार परमात्मा को जीवात्मा पर अधिकार प्राप्त है कि उसकी उद्दण्डता व प्रमाद-लापरवाही पर उसको अधम योनियों में भेज दे और श्रेष्ठ कर्म करने तथा सूझबूझ दक्षता के लिए उसे ऊँचा स्थान प्रदान करे। जीव पर इस अधिकार के कारण ही परमात्मा उसका स्वामी कहलाता है।

❑❑

दलितोद्धार की आड़ में (५)

(राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! वेदों में 'असुर' शब्द परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है प्राणदाता। उपनिषदों में 'असुर' शब्द प्राणों के पोषण में लगे अर्थात् शरीर को ही सब कुछ मानकर उसी के पालन-पोषण तक सीमित रहने वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। बाद के लौकिक साहित्य (रामायण, महाभारत आदि) में 'असुर' शब्द दस्यु अनार्य आदि अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। 'असुर' वर्तमान जन्मना (जाट, गुज्जर, अहीर आदि) जाति की तरह कोई विशेष जाति नहीं थी। भगवद् गीता के १६वें अध्याय में जहाँ दैवी सम्पदा (इन्द्रियों का दमन, अहिंसा, सत्य, अन्त:करण की शुद्धि, अक्रोध, त्याग, शान्ति आदि गुणों) का वर्णन है, वहाँ आसुरी सम्पदा (दम्भ, घमण्ड, क्रोध, अविवेक, अन्त:करण की कठोरता आदि) का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। उन-उन गुणों से युक्त व्यक्ति को उसी प्रकार की संज्ञा दी जाती है।

पुलस्त्य ऋषि के वंश में जन्म लेकर भी रावण असुरों का राजा कहलाया और असुर राजा हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद दैवी सम्पदा का धनी होकर आर्यों का वन्दनीय हो गया। भरतवंश में जन्मा युधिष्ठिर धर्मराज कहलाया, जबकि दुर्योधन आसुरी सम्पदा का धनी बनकर कलंकित हुआ। यही नहीं, एक व्यक्ति अलग-अलग परिस्थितियों में अपने आचरण के कारण आर्य व दस्यु (अनार्य) कहा गया। जैसे रावण असुरों का राजा था परन्तु उसके लिये कई बार आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। संस्कृत साहित्य में आर्य की पहचान बताते हुआ लिखा है कि:-

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रिय:।
दाता दयालु नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणै:।।

अर्थात्- ज्ञानी, सन्तुष्ट, मन को वश में रखने वाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र व्यक्ति आर्य होता है। इसके विपरीत अनार्य, दस्यु व असुर कहलाता है। असुर व दस्यु का अर्थ 'दलित जाति' कहने वालों को महाभारत (शान्ति) पर्व का यह श्लोक पढ़ लेना चाहिए:-

दृश्यन्ते मानवे लोके, सर्व वर्णेषु दस्यव:।
लिङ्गान्तरे वर्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि॥ (६५-२३)

अर्थात्:- मनुष्य लोक में सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) तथा चारों आश्रमों में दस्यु (डाकु लुटेरे) देखे जाते हैं, जो विभिन्न वेशभूषाओं से अपने को छिपाये रखते हैं। अर्थात् दस्यु कोई जाति नहीं है।

हाँ, समय-परिवर्तन के साथ व मनमानी करने वालों के कारण समाज में धीरे-धीरे कुछ बुराइयाँ आयीं और बाद में धर्म शास्त्रों से उनका औचित्य सिद्ध करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में (चालाक पण्डितों ने) नवीनता जोड़ दी। यदि कुछ मैला वस्त्र पहनने योग्य है तो उसे फैंकने की अपेक्षा धोकर प्रयोग में लाना ही बुद्धिमानी है। मनुस्मृति के शूद्र-विरोधी कुछ श्लोको को उठाकर समस्त मनुस्मृति को त्याज्य व जलाने योग्य बताना तो ऐसा ही है जैसे लन्दन जैसे किसी सुन्दर नगर को गन्दे नाले या कूड़े के ढ़ेर के पास खड़े होकर यह कहना कि इस नगर में तो केवल गन्दगी ही गन्दगी है, यह रहने योग्य नहीं है। वर्त्तमान हिन्दुओं को हर रस्मो रिवाज में मनुवाद ढूँढने

वाले अम्बेडकरवादियों को पता होना चाहिए कि ऋषि दयानन्द ने १८७५ ई० में मनुस्मृति में मिलावट होने की घोषणा कर दी थी और प्रक्षिप्त श्लोकों का त्याज्य कहा है। फिर भी बार-बार उन्हीं को प्रस्तुत कर महर्षि मनु का विरोध किया जाता है। लेखक डॉ० सोहनपाल सुमनाक्षर द्वारा प्रस्तुत मनुस्मृति के कुछ श्लोक देखिए :-

१. ब्राह्मण विश्वास पूर्वक शूद्र सेवक का धन ले सकता है क्योंकि उसे जायदाद रखने का अधिकार नहीं है। (मनुस्मृति ४.४७)।

२. अगर क्षत्री भूखा मरने लगे तो वह दस्यु का धन ले सकता है। (मनुस्मृति ११.१४)।

३. शूद्र को झूठा अन्न, पुराने वस्त्र और बिछौने देने चाहिए। (मनुस्मृति १२.१२५५)

४. यदि शूद्र वैर से ब्राह्मण आदि की निन्दा करे तो दस अंगुल की लोहे की कील गर्म करके उसके मुँह में डाल दें (मनुस्मृति ३.७१)

५. शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य से अनुचित बोले तो उसकी जीभ कटवा देनी चाहिए। (मनुस्मृति ८.२७७)

अब उस पते के श्लोकों का वास्तविक अर्थ देखिए:-

१. "प्राणी युक्त बिलों में, चलता हुए या खड़े होकर, नदी के किनारे या पहाड़ की चोटी पर पेशाब न करें।" (मनु० ४.४७)

२. "जो अग्निहोत्र करता नहीं और १०० गायों का स्वामी है; जिसे कोई यज्ञ करना नहीं है और १००० गोपरिमित धन का स्वामी है- ऐसे व्यक्तियों के कुटुम्ब से भी बिना विचारे (यज्ञपूर्ति के लिए) धन ले ले।" (मनु० ११.१४)

३. (मनु० १२.१२५५) इस पते वाला कोई श्लोक मनुस्मृति में नहीं है।

४. "गाय के दूध या खीर से एक वर्ष तक, वाध्रीणस (एक प्रकार का बकरा) के मांस से बारह वर्ष तक पितर तृप्त रहते हैं।" (मनु० ३.२७१)

५. "वैश्य शूद्र यदि अपनी-अपनी जाति वाले को गाली दें तो इस प्रकार अर्थात् वैश्य को 'प्रथम साहस' व शूद्र को 'मध्यम साहस' दण्ड दे; शूद्र की जिह्वा न काटें; यह मर्यादा है।" (मनु० ८.२७७)

इनमें से कई श्लोक प्रक्षिप्त हैं और इनका अर्थ वह नहीं है, जो लेखक ने लिखा है। फिर भी उसी को सत्य मानकर भीम सैनिकों ने ब्राह्मण आदि के द्वारा शूद्रों को अपमानित व प्रताड़ित करते हुए फिल्में बनाकर प्रचारित भी कर दीं। फिर उसका प्रभाव तो होना ही था-दलित-सवर्ण संघर्ष। यह सब अनजाने में नहीं, जानबूझकर षड्यन्त्र रचा गया है। बिना प्रमाण और बिना आधार की कल्पना की गई है। लेखक ने लिखा है- "अनार्य शूद्रों का आर्यों के खिलाफ संघर्ष दलित आन्दोलन तो है, पर तत्कालीन अनार्यों द्वारा लिखित साहित्य की उपलब्धि होने पर हम दलित साहित्य आन्दोलन के प्रारम्भिक चरण का नाम दे सकेंगे।" (पृ० ३५)

"जब ब्राह्मणों का अत्याचार वर्णव्यवस्था और अपने धर्मग्रन्थों के सहारे चरम सीमा पर पहुँच गया तो महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर स्वामी इसके विरोध में सामने आये। यज्ञों में पशु और नरबलि के विरुद्ध इन दोनों क्षत्रिय राजकुमारों ने **'अहिंसा परमो धर्मः'** का नारा दिया और सभी (उत्पीड़ित शूद्रों ने) आर्यों के चंगुल से निकलकर बुद्ध की शरण में आकर बौद्ध धर्म अपना लिया। कुछ वैश्य और पिछड़ी जातियां महावीर स्वामी के जैन धर्म में शामिल हो गईं।" (पृ० ३७)

समीक्षा- महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी दोनों

आर्यों के क्षत्रिय राजकुमार थे, जिन्होंने वैदिक धर्म को दूषित करने वाले धूर्त्त पण्डितों की मनमानी का विरोध करते हुए यज्ञ में दी जाने वाली बलि प्रथा का विरोध किया और महाभारत की शिक्षा **'अहिंसा परमो धर्मः'** (वनपर्व २०७.७४) का प्रचार किया। बहुत से शूद्र भी बौद्ध बन गये। यदि सभी शूद्र बौद्ध बन जाते तो हिन्दुओं में शूद्रों की संख्या १९४७ ई० में सात करोड़ न होती और बौद्ध मत भारत से समाप्त न हुआ होता। यदि सभी शूद्र आर्यों के चंगुल से निकलकर बौद्ध बन गये थे तो उन्होंने आर्यों के अत्याचार के विरुद्ध साहित्य अवश्य लिखा होगा। वैसे भी अब उन्हें आर्यों से भय नहीं था, क्योंकि सम्राट् अशोक आदि मौर्य राजा बौद्ध बन गये थे, यहाँ तक की कुषाण राजा कनिष्क भी बौद्ध बन गया था। अतः बौद्धों में शूद्रों को समानता का व्यवहार मिला होगा। क्या उस काल में बौद्धों व सिद्धों के द्वारा लिखी गई कोई रचना दलित साहित्य का स्थान नहीं पा सकती? जो आज दलित साहित्यकारों को उल्टी सीधी कल्पना करनी पड़ रही है।

जब लेखक मानता है कि ८४ सिद्ध कवियों में से ३५ या ३० शूद्र और २४ तीर्थंकरों में से अधिकांश दलित समाज से सम्बन्धित थे, तो यह सिद्ध होता है कि तब उन पर जाति वाली बन्दिश नहीं थी। वैसे भी यदि २४वें तीर्थंकर महावीर स्वामी से पूर्व २३ तीर्थंकर (अधिकतर शुद्र-दलित) हो चुके थे, तो उन्होंने अपने दलित भाइयों के लिए कुछ भी कर्म क्यों नहीं किया? इससे लगता है कि तब जाति-पाति की इतनी भयंकर अवस्था नहीं थी, जितनी आज के दलित लेखकों के द्वारा प्रचारित की जा रही है।

"(बौद्ध) महाराजा अशोक के पोते बृहद्रथ को ब्राह्मणी षड्यन्त्र के तहत पुष्यमित्र शंग ने मार डाला, बौद्ध विहारों को खण्डित कर दिया और बौद्ध भिक्षुओं का यातनाएँ दी जिससे बौद्ध धर्म का भारत में विनाश शुरू हो गया। दलित (अछूत) बौद्धों को अपनी जान बचाने के लिए पलायन करना पड़ा। अब हिन्दू धर्म में उनके लिए द्वार बंद थे और मुसलमान वे बनना नहीं चाहते थे, ऐसी विकट स्थिति में पुनः समाज के सबसे नीचे तबके के रूप में उन्हें फिर अछूत का अपमानजनक जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ा।" (पृ० ३८)

समीक्षा- प्रचलित मान्यता के अनुसार बौद्ध मत के प्रचारक सम्राट् अशोक की मृत्यु २३२ ई० पू० में हुई थी। उसके बाद उसके ६ उत्तराधिकारियों ने १८४ ई० पू० तक राज्य किया। इतिहासकारों के अनुसार बौद्ध मत की अहिंसा का प्रचार सैनिकों में भी हो गया, जिससे विदेशी आक्रमण भारत पर होने लगे। उनसे टकराने के लिए वीर शक्तिशाली राजा की आवश्यकता थी। सम्भवतः इसलिए पुष्यमित्र शुंग सेनापति ने अपने मौर्य (बौद्ध) राजा बृहद्रथ की हत्या की और स्वयं राजा बन गया। सेना ने पुष्यमित्र के विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं किया। इससे यही पता चलता है कि सेना राजा की अपेक्षा अपने सेनापति के प्रति अधिक निष्ठावान थी। पुष्यमित्र ने राजा बनने के बाद भी अपने आपको सेनापति ही कहता रहा और कोई भी शाही उपाधि धारण नहीं की। वह ब्राह्मण था इसलिए बौद्ध ग्रन्थ 'दिव्यावदान' में उसे बौद्धों का विरोधी व उन्हें सताने वाला लिखा है। लेकिन इस तथ्य को देखते हुए साँची और भरहुत के स्तूपों का पुष्यमित्र के शासन काल में ही विस्तार किया गया था, यह आरोप सच्चा प्रतीत नहीं होता। बौद्ध बनने के ३००-४०० वर्ष बाद भी क्या दलित दलित ही रहे, जो उन्हें जान बचाने के लिए भागना पड़ा? लेखक जिस समय की बात कर रहा है, इस्लाम तो उसके ७०० वर्षों बाद अरब में पैदा हुआ था, फिर कोई मुस्लिम बनना कैसे चाहता? यदि बौद्धों का विनाश शुंग काल में शुरू हो गया होता तो इसके

लगभग ५५० वर्ष बाद (४०० ई०) भारत आया चीनी यात्री फाहियान भारत को बौद्ध रंग में रंगा हुआ न पाता। उसके वर्णन को पढ़कर लगता है कि जैसे भारत में बौद्ध मत के अतिरिक्त दूसरा मत ही नहीं था। सातवीं शताब्दी ई० (६३० ई० के लगभग) में भारत पहुँचा चीनी यात्री ह्वान सांग लिखता है कि सम्राट् हर्षवर्धन की राजधानी कन्नौज में उसके सम्मान की सभा आयोजित की गई। राजा के मन में उसके प्रति बहुत स्नेह और आदर था। इस सभा में बीस राजाओं, चार हजार बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया था। ह्वान सांग हमें सम्राट् हर्षवर्धन की बौद्ध धर्म के प्रति अनुरक्ति और बौद्धों को संरक्षण दिए जाने तथा उसके द्वारा पवित्र बौद्ध स्थलों पर बौद्ध विहार आदि बनवाने के बारे में बताता है।

लेखक ने ऊपर बौद्धों की जिस दूरावस्था का वर्णन किया है, वह तो मुस्लिम आक्रमण के बाद उपस्थित हुई थी। सिन्ध पर मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के (७१२ ई०) के समय बौद्ध विहार की ७०० भिक्षुणियों को मुसलमानों ने बाँदियाँ बना लिया। खिलाफत के अनुसार इसमें पांचवां अंश लूट खलीफ़ा के पास भेजी गई, बाकी सेना में बाँट दी गईं। मुहम्मद गौरी के शासन काल (११९७ ई०) में उसके सेनानायक बख्तियार खिलजी ने बिहार पर आक्रमण के समय नालन्दा विश्वविद्यालय के हजारों छात्रों और अध्यापकों (जो लगभग बौद्ध थे) को काट डाला व विश्वविद्यालय में आग लगा दी। इसके साथ ही विनाश का वह दृश्य उपस्थित हुआ जिसका दोष दलित लेखक १४०० वर्ष पूर्व के हिन्दू राजा के माथे मढ़ रहा है। "भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ" पुस्तक में वीर सावरकर ने इस विनाश का चित्र यूँ खींचा है:-

"जैसे-जैसे मुसलमान भारत के विभिन्न प्रान्तों पर विजय प्राप्त करते गये, वैसे-वैसे अपनी तलवार के बल पर बौद्ध जनता का भी नाश करते गये।..... एक के बाद दूसरे सेनापतियों और सेनाओं ने समस्त हिन्दुस्तान के बौद्ध स्तूप, संघाराम, विहार, बुद्धमूर्ति, स्तम्भ आदि तोड़-फोड़कर ध्वस्त कर डाला। मृत्यु के भय से अनेक बौद्धों ने मुसलमान बनकर अपनी प्राण रक्षा की। गंगाधर, कम्बोज इत्यादि.....वहाँ एक भी बौद्ध शेष न रहा। सभी मुसलमान बन गये। बख्तियार खिलजी के आक्रमण का समाचार पाते ही बिहार के बहुत से बौद्ध अपने प्राण और धर्मग्रन्थ बचाने के लिए अनेक ग्रन्थ लेकर चीन की ओर भाग गये। जो बचे वो भ्रष्ट कर दिए गये और जो अपने धर्म पर अड़े रहे, वे शहीद हो गये; परन्तु युद्ध किसी ने भी नहीं किया।"

दलित साहित्यकार ने इन आक्रान्ताओं की निन्दा में एक शब्द भी नहीं लिखा। इसके विपरीत इस घटना से लगभग १२००-१४०० वर्ष पूर्व हुए ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुंग को दोष देते हुए लिखा है- "धोखे से पुष्यमित्र द्वारा सम्राट् अशोक के पौत्र महाराजा बृहद्रथ की हत्या किये जाने से बौद्ध धर्म का पलायन और लोप शुरू हो गया। कुछ बौद्ध भिक्षु अपनी जान बचाने के लिए ऊँचे पहाड़ों पर, कुछ घने जंगलों में और कुछ गुफाओं में चले गये, जो हाथ आये उन्हें मार दिया गया। बौद्ध विहार और बौद्ध मठों को नष्ट कर दिया गया, नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों को जलाकर राख कर दिया गया। ८वीं शताब्दी में दोहराया गया यह तांडव आज से ५ हजार वर्ष पूर्व इन्हीं ब्राह्मणवादी आर्यों के पूर्वजों द्वारा सिन्धु घाटी के नगरों और वहाँ की द्रविड़ सभ्यता को नष्ट भ्रष्ट करने से किसी तरह कम न था।"

"सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर नालन्दा और तक्षशिला सभ्यता के उजड़ने की कहानी व इतिहास जमीन में दबा रह जाता अगर अंग्रेज शासक भारत के

असली इतिहास को जानने की कोशिश नहीं करते।" (पृ० ६८-६९)

समीक्षा- प्रबुद्ध पाठक! देखिये, क्या इन घटनाओं में कोई संगति है? राजा पुष्यमित्र को वर्त्तमान इतिहासकार १८४ ई० पू० मानते हैं, लेखक उन्हें ८वीं शताब्दी में ला रहा है। नालन्दा विश्वविद्यालय बख्तियार खिलजी ने ११९७ ई० में जलाया। लेखक उसे ८वीं शताब्दी में हिन्दू राजा पुष्यमित्र से जलवा रहा है। आर्यों को विदेशी मानने वाले विदेशी लेखक व उनके पिछलग्गु इतिहासकार १५०० ई०पू० आर्यों को भारत आना मानते है, जबकि लेखक ५००० वर्ष पूर्व आर्यों से सिन्धु घाटी का विनाश करवा रहा है। पहले भी लेखक ने पुष्यमित्र के काल में हिन्दुओं से पीड़ित बौद्धों द्वारा मुसलमान न बनने की बात कही थी। जब भारतीय दलित साहित्य अकादमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष इतिहास में यूँ घोटाला करेंगे, तो फिर राजनैतिक लाभ लेने वाले लोग तो दो कदम आगे ही रखेंगे। पूर्व सांसद सावित्री बाई फूले ने दलित समाज को होली मनाने से मना करते हुए कहा कि ब्राह्मणों ने दलित राजा हिरण्यकशिपु के बेटे प्रह्लाद को शराबी बनाकर अपने पक्ष में कर लिया और उसकी बहन होलिका से बलात्कार कर उसे आग में जला दिया। यह त्यौहार तुम्हारी (दलितों की) हार है।

लेखक जिन बातों के लिए अंग्रेजों का धन्यवाद कर रहा है, आज वैज्ञानिक शोध के आधार पर भी वे झूठी व कल्पना सिद्ध हो चुकी हैं। नालन्दा के पास बसा बख्तियारपुर और मिनहज-अस्-सिराज की पुस्तक 'तबकात-ए-नासिरी' का वर्णन नालन्दा विश्वविद्यालय के विनाशकर्त्ता के अत्याचार की साक्षी दे रहे हैं, पर आर्यों के प्रति घृणा-द्वेष से भरे लेखक सम्राट् को यह सब आर्यों का ही अत्याचार लगता है। जबकि अंग्रेज इतिहासकारों ने भी ऐसा नहीं लिखा।

भरत में बौद्ध मत मिटने के कई कारण थे, उनमें से एक कारण राजाश्रय पाकर विलासी हुए बौद्ध भिक्षुओं का स्वच्छन्द आचरण भी रहा है। हीनयान-महायान शखाओं तक सीमित न रहकर बौद्ध मत शाखा-प्रशाखाओं में बँटता चला गया। बौद्ध साधु संसार के सुखों की कामना करने लगे। आठवीं शताब्दी तक आते-आते अधिकतर बौद्ध तांत्रिक बन चुके थे। बुद्ध की सीधी सादी शिक्षाओं से उनका विश्वास उठ चुका था। महाकवि दिनकर जी ने लिखा है- "ये लोग शराब में मस्त, खोपड़ी का प्याला लिये, श्मशान या विकट जंगलों में रहा करते थे। ये लोग खुल्लम खुल्ला स्त्रियों और शराब का उपयोग करते थे। राजा अपनी कन्याएँ तक उन्हें प्रदान करते थे।" (सं० के चार अध्याय, पृ० १९५)

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- "जो तंत्र हम लोगों में प्रचलित है, उनका सूत्रपात बौद्धो के द्वारा ही हुआ था। वे तांत्रिक अनुष्ठान हमारे वाममार्गवाद से भी अधिक भयंकर थे। उनमें व्यभिचार के लिये कोई रोक-टोक न थी। जब बौद्ध लोग अत्यंत व्यभिचार परायण और अनैतिक बनकर निर्वीर्य हो गये थे, तभी कुमारिल भट्ट ने उन्हें यहाँ से भगा दिया।" (वि० सा० प्र० खं०, पृ० ३६०)

बाद में बौद्ध भिक्षु व्याभिचारी बन गये थे, इस सत्य को लेखक भी मानता है, पर वह इसका दोष भी हिन्दूओ को ही देता है- "इसी समय (१८४ ई० पू०) अपमानित व उपेक्षित पंडों, पुजारियों और पुरोहितों ने छद्म बौद्ध बनकर बौद्ध विहारों में प्रवेश किया और वहाँ व्यभिचार फैलाना शुरू कर दिया। शान्त स्वभाव निहत्थे बौद्ध भिक्षुओं और भक्तों को मारना शुरू कर दिया।".....(पृ० ६८)

समीक्षा- बौद्ध मत का प्रादुर्भाव वैदिक ब्राह्मणों की मनमानी के विरोध स्वरूप हुआ था। अत: बौद्धों व स्वार्थी ब्राह्मणों में टकराव होना स्वाभाविक था। मौर्य राजाओं द्वारा बौद्ध मत को आश्रय देने के कारण

वह द्वेष भाव और बढ़ गया। सभी लोग शत्रु की कमजोर कड़ी पर प्रहार करते हैं। यदि ब्राह्मणों ने भी यही किया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है पर यदि बौद्ध भिक्षु महात्मा बुद्ध के सदाचार व संयम के मार्ग पर चले होते तो छद्म बौद्ध (ब्राह्मण) उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। आज ब्राह्मणों को दोष देने से बौद्ध पवित्र नहीं हो जायेंगे। दिनकर जी ने तो लिखा है कि स्त्रियों को भिक्षु संघ में सम्मिलित करने का दुष्परिणाम बुद्ध के जीवन में काल में ही दिखाई पड़ गये थे। बाद को चलकर इस देश में जो भ्रष्ट साधुओ की संख्या बढ़ी और सिद्धों ने जो स्त्रियों के सहवास की महिमा गानी शुरू की, वे सारे के सारे दुष्कांड इसी भिक्षुणी प्रथा से उत्पन्न हुए। हिन्दु मन्दिरों में देवदासी की प्रथा, बौद्धों की इस भिक्षुणी प्रथा की ही देन थी।

स्वामी श्रद्धानन्द ने कर्नल यू० मुखर्जी को उद्धृत करते हुए लिखा है- "भारत के कुल मुसलमानों का ३६ प्रतिशत अथवा २ करोड़ ४० लाख (१९५४ ई० में) मुसलमान बंगाल में रहते हैं।....यहाँ के निवासी पूरी तरह से हिन्दु कभी नहीं हुए थे, सम्भवत: उनमें से अधिकतर मुसलमानों के पहले हमले के समय बौद्ध धर्म के एक विकृत रूप को मानते थे। ऊँचे वर्ण वाले हिन्दू उन्हें अपवित्र मानते थे, इसलिए ये बौद्ध आसानी से मुसलमानों की इस शिक्षा को स्वीकार कर लेते थे कि अल्लाह की नजर में सब आदमी समान हैं। कभी कभी उसके लिये जबर्दस्ती भी हुई होगी।" (हि० सं०, १२) अर्थात् मुस्लिम बनने वाले लोग अधिकतर बौद्ध ही थे। यही कारण है कि लगभग १८०० वर्ष हिन्दू राजाओं के रहते जो बौद्ध फलता-फूलता रहा, मुस्लिम काल के आते ही उसका सफाया हो गया। पहले कुछ शाखाओं के बौद्ध तांत्रिक हिन्दु बौद्धों का मिला-जुला सम्प्रदाय था। इन सबमें कम या अधिक रूप में वाममार्ग ही चलता था। हिन्दू धर्म के शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय भी इनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। पुराणों की अश्लील कहानियाँ व तत्कालिन मन्दिरों पर बनी स्त्री-पुरुषों की नग्न मूत्तियाँ उसी युग की देन हैं, जिनकी ओर भाई-बहन एक साथ आँखें नहीं उठा सकते। सोचिये, क्या यह चरित्र-पतन देश को पराधीन कराने में सहायक नहीं हुआ होगा!

(क्रमश:)

❑❑

पृष्ठ १४ का शेष

अक्षर शब्द का पाठ ऋषि ने किया है। अक्षर शब्द के द्वारा भी अक्षरता अर्थात् नित्यता ही ध्वनित होती है। जैसा कि महाभाष्य में अक्षरं नक्षरं विद्यादित्यादि कहकर व्याख्यान किया है।

अब हम अन्त में अपने कथन की पुष्टि में ऋषि वचन उद्धृत कर समापन की ओर जाते हैं-

तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्त्वात्-वेदों का ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेद नित्य हैं। अत: **कारणादीश्वरविद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे**- इस कारण से **ईश्वर विद्यामयत्वेन**- ईश्वर में विद्या प्राचार्यु से होने से वेद नित्य है क्योंकि वेद उसकी विद्यास्वरूप ही है।

यथास्मिन् कल्पे वेदेषु शब्दाक्षरसम्बन्धा: सन्ति तथैव पूर्वमासन् अग्रे भविष्यन्ति च। कुत: ईश्वर विद्याया नित्यत्वाद्व्यभिचारित्वाच्च।

जैसे इस कल्प की सृष्टि में वेदों में शब्दाक्षरसम्बन्ध है वैसे पहले कल्प में थे और आगे भी होंगे क्योंकि ईश्वर की विद्या के नित्य होने से और व्यभिचारी होने से-अर्थात् वृद्धि क्षय और विपरीतता कभी नहीं होने से ईश्वर अपनी विद्या से विद्यामय है जिसमें वेद सदा वर्त्तमान रहते हैं और उसी से वेद सृष्ट होते हैं। विद्या नित्य है तो वह भी नित्य है। यही विद्यामयत्व का महत्त्व दार्शनिक व वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित हुआ।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/११/२०२०
भार- ४० ग्राम

नवम्बर 2020

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650522778
E-mail : aspt.india@gmail.com

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा0.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।